Chapter. 5

अध्याय : 5

# व्यंग्यात्मक परिवेश के नाना आयाम

## अध्याय : 5

## व्यंग्यात्मक परिवेश के नाना आयाम

पूर्व विवेचन में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि प्रस्तुत अध्ययन में व्यंग्यात्मकता की दृष्टि से उपन्यास के अलग अलग स्तरों को विचाराधीन रखा गया है । एक उपन्यासों की वह कोटि है जिसमें व्यंग्यात्मकता ही को लक्ष्य में रखा गया है, दूसरी कोटि वह है जिसमें प्रधान स्वर व्यंग्यात्मकता है और तीसरी कोटि वह है जिसमें उपन्यासों में व्यंग्यात्मक स्थलों व स्थितियों को तलाशा गया है । प्रस्तुत अध्याय में हम प्रथम दो कोटियों को सविशेष लेंगे ।

परिवेश या वातावरण या देशकाल तो प्रत्येक उपन्यास में होता है क्योंकि इसीसे उपन्यास की विश्वसनीयता में वृद्धि होती है । वह उपन्यास के सामाजिक - राजनीतिक संदर्भ को एक पृष्ठभूमि प्रदान करता है । परिवेश वस्तु-निर्माण एवं पात्र-निर्माण में भी सहायक होता है । वातावरण के निर्देश मात्र से ही हमें कई बार आगामी घटनाओं का आभास मिलने लगता है ।[1] एक प्रकार के परिवेश में जो घटना, चरित्र या भाषा अवास्तविक से जान पड़ते हैं, परिवेश के बदलते ही वे यथार्थ प्रतीत होते हैं । उदाहरणार्थ मनोहर श्याम जोशी द्वारा लिखित उपन्यास "कुरू कुरू स्वाहा" का यह उद्धरण अपनी कृत्रिम भाषा एवं क्लिष्टता के कारण हमें आज के संदर्भ में कुछ अवास्तविक-सा लग सकता है, यदि हम

उसके परिवेश का विस्मरण कर जाय -- "आप आयुष्यमान खलीक के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में चिंतित थे, अतएव सोचा कि आपको सूचित कर दूँ कि वह उसी वरार्थिनी सौभाग्यकांक्षिणी स्वर साधिका का पाणिग्रहण करके पुन: अवतरित हुआ है । इस उपलक्ष्य में सायं - स्मरणीय बंग-बंधु पूर्वेन्दु ने कुक्कुट - पुच्छिकाओं का आयोजन किया है । आप अविलम्ब बंग-बंधु निवास पहुँचने का कष्ट करें ।"[2]

उपर्युक्त अवतरण में "वरार्थिनी", "स्वर-साधिका", "सायं-स्मरणीय" एवं कुक्कुट-पुच्छिकाओं जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है । "प्रात: स्मरणीय" के वज़न पर "सायं - स्मरणीय" शब्द प्रयुक्त हुआ है । "कोक-टेल" पार्टी के लिए "कुक्कुट - पुच्छिका" का जैसा शब्द-प्रयोग अभी सामान्यत: प्रयोक्ताओं द्वारा व्यवहार में नहीं लाया जाता । अत: कुछ अवास्तविक एवं हास्यास्पद-सा लगता है । परन्तु जब हम उपन्यास के व्यंग्यात्मक रूपबन्ध एवं भाषा तेवरों को लक्ष्य करते हैं तब यही उद्धरण हमें सार्थक प्रतीत होता है ।

उपहास एवं व्यंग्य की सृष्टि के लिए लेखक ने मित्रवर नामक एक पात्र की रचना की है जो समग्र उपन्यास में इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग करता है ।[3] गुजराती हास्य-लेखक रमणभाई नीलकंठ की अमर कृति "भद्रंभद्र" में भद्रंभद्र की भाषा को यहाँ लक्ष्य किया जा सकता है ।

तात्पर्य यह कि अन्यथा जो बात हमें अवास्तविक वा कृत्रिम लग सकती है वह उपन्यास के व्यंग्यात्मक परिवेश के कारण हमें स्वाभाविक-सी लगने लगती है ।

सभी प्रकार के औपन्यासिक रूपों में परिवेश का तत्त्व अनिवार्यतः रहता है, तथापि उपन्यास के रूपबन्ध के अनुसार उसके निरूपण एवं विवरण में कुछ अन्तर अवश्य आ जाता है । प्रेमचन्द और श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास "गोदान" एवं "राग दरबारी" का परिवेश ग्राम - भित्तीय होते हुए भी दोनों की परिवेश निरूपण विधि औपन्यासिक रूपबन्ध अतएव उद्देश्य की भिन्नता के कारण स्पष्टतः अलग - अलग है । तात्पर्य यह कि परिवेश निरूपण ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, समाजवादी आंचलिक प्रभृति सभी औपन्यासिक रूपों में कम-अधिक परिमाण में होता है, किन्तु व्यंग्यात्मक उपन्यासों में उसकी निरूपण विधि ठीक वही नहीं होती जो अन्य रूपों में पायी जाती है । यहाँ तक कि उसमें आये हुए गाँव - खेड़े और संस्थाओं के नामों में भी कुछ व्यंग्यात्मक वक्रता उपलब्ध होती है, यथा "राग दरबारी" में "छंगामल इण्टरमीजिएट" कालेज" और "सबहि नचावत राम गोसाईं" में निरूपित घमण्डीसिंह कालेज ।

अतः इस अध्याय में व्यंग्यात्मक उपन्यासों के परिप्रेक्ष्य में उसके परिवेश गत आयामों को विश्लेषित करने का प्रयत्न किया गया है ।

## भाषा

परिवेश निरूपण में भाषा का योगदान निश्चित रूप से महत्वपूर्ण होगा क्योंकि भाषा द्वारा ही विश्वसनीय सन्दर्भ स्थापित हो सकता है । राल्फ फोक्स महोदय के अनुसार उपन्यास केवल प्रकथनात्मक गद्य न होकर, मानव जीवन का गद्य है ।[4] अतः परिवेश की दृष्टि से उपन्यासकार को

उस विशेष परिवेश गत भाषा पर अधिकार प्राप्त करना होगा, अन्यथा वह विफल हो सकता है । भाषा पात्रानुकूल ही नहीं परिवेशानुकूल भी होनी चाहिए और व्यंग्यात्मक उपन्यासों में तो भाषा व्यंग्य-सृष्टि का एक प्रमुख औजार है ।

"राग दरबारी" में निरूपित शिवपालगंज का क्षेत्र अवधी का है, अत: उसके प्रिंसिपल साहब भावातिरेक और क्रोध के क्षणों में ठेठ अवधी का प्रयोग करते हुए पाये जाते हैं । कई बार तो वे खड़ीबोली से सीधे स्थानीय अवधी बोली पर चले जाते हैं । एक स्थान पर मास्टर मालवीय उनसे कुछ तर्क करता है तब एकदम चीखते हुए वे बोलते हैं : "मैं सब समझता हूँ, तुम भी खन्ना की तरह बहस करने लगे हो । मैं सातवें और नवें का फर्क समझता हूँ । हमका अब प्रिंसिपली करै न सिखाव भैया । जौनु हुकुम है, तौनु चुप्पे कैरी आउट करौ । समझ्यौ कि नाहीं ।"[5] यहाँ अंग्रेजी भाषा का 'Carry out' शब्द प्रस्तुत सन्दर्भ में एक व्यंग्यात्मक मुद्रा को उपस्थित करता है । यहाँ यह स्मरण रहे कि परिवेश-गत भाषिक संरचना तो सभी उपन्यासों में होती है, किन्तु चूँकि व्यंग्यात्मक उपन्यासों का परिवेश भी व्यंग्यात्मक मुद्रा को लिए हुए रहता है अत: यहाँ परिवेशगत भाषा रूप के अतिरिक्त भाषा के व्यंग्यात्मक तेवरों को भी लक्षित किया जाना चाहिए ।

"कुरू कुरू स्वाहा" बम्बई के महानगरीय परिवेश पर आधारित उपन्यास है । इस उपन्यास में निरूपित "तारा झावेरी" एक बहुश्रुत पर बिगडी हुई गुजराती महिला है । वह कई बार व्यंग्यात्मक सन्दर्भों में

संस्कृत प्रचुर शब्दावली के साथ "एनो मीनिंग सूँ ?" का प्रयोग करती है, यथा -- "खोजते मुझे या यहीं बैठे रहते कि कभी खोजती हुई आ जाऊँ। गदहे, प्रेमी, जासूस और मछेरे का धैर्य ही धन है। प्रारम्भ विध्ननिहिता विरमन्ति मध्या:, एनो मीनिंग सूँ ?"[6]

इसी उपन्यास के मिस्टर तलाटी में हमें बम्बइया हिन्दी का अच्छा उदाहरण मिल जाता है, जो संस्कृत के तो अच्छे ज्ञाता है किन्तु हिन्दी उनकी वही है "पूरा श्लोक एइसा माफिक कि प्रारम्भते न खलु विध्नभयेन नीचै: , प्रारम्भ - विध्ननिहिता विरमन्ति मध्या: । -- विध्नमुँहुमुँहुरपि प्रतिहन्यमाना, प्रारब्धमुत्तमगुणा न परित्यजन्ति । अन्वय करने से स्पष्ट होयेगा -- नीचै: विध्न भयेन न प्रारम्भते, मीन्स नीचा लोक विध्न का डर से सरू ही नहीं करता । मध्या: प्रारम्भ विध्न निहिता: विरमन्ति, मीन्स बीच का लोक सरू करके विध्न आने से छोड देता है । उत्तमगुणा: विध्नै: मुहु मुहु: प्रतिहन्यमाना: अपि - प्रारब्धम् न परित्यजन्ति, मीन्स बड़ा लोक विध्न से बार बार पीटा जाकर भी सरू किएला को छोडता नहीं । नीति का मौत हाई वातो बोल गया है भर्तृहरि ।"[7]

इन्हीं मनोहर श्याम जोशी के अन्य उपन्यास "नेताजी कहिन" के नेताजी हमेशा बैसवाडी झाडते रहते हैं। इस उपन्यास में राजनीतिक परिवेश में व्याप्त भ्रष्टाचार का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया गया है । इसमें कैसे कैसे भ्रष्ट और किस स्तर के लोग आ गये हैं, नेताजी की ही जबानी एक उदाहरण दृष्टव्य है : वइसे हँसी-ठट्ठे की बात नहीं हय ।

पाल्टक्स में सीरसली कामहि तब चलता है जब आप सबै खेलों का नाम एक साथ ले डालो । अरे कोई ओटर इस ख्याल का है, कोई उस ख्याल का । सबकी-सी कहोगे तबहि सबका ओट पाओगे । अक्स्ट्रीम में जाइयेगा तो क्रीम नहीं पाइयेगा । अरे साहब परसों लम्बी चव्ड़ी बहस हो गयी गुरूजी से मध-प्रदेस भवन में हमारी । उनको भी यही समझाये हम । न पालसी के मामले में अक्स्ट्रीम में जाइए, न लायल्टी के । मार फँसे हैं सुक्लागर्दी में । अरे पाल्टक्स में एक लायल्टी आपकी मयडम से हइये हय, अउर किसी लायल्टी को चाटियेगा ? फ्लुइड नक्सा है, फ्लुइड रहिए आप । सही इक्वेसन के लिए चउतरफा हाथ मारा जाता हय । गाँधी बाबा तब कहि गये हैं कि हर खिड़की - दरउज्जा खुला रख बेटा, मउका आने दे हर तरफ से ।" नेताजी के साथी के कहने पर कि -- "गाँधीजी ने झोंका कहा था, मौका नही", तब इसी लट्ठमार भाषा में नेताजी बड़ी बेशर्मी से जवाब देते हैं -- अरे मउके से ही तो अइबे करेगा झोंका ? "

तात्पर्य यह कि परिवेश निर्माण में भाषा का योगदान असंदिग्ध है । आगे छठे अध्याय में इस पर विस्तार से विचार किया जायेगा, अत: केवल यहाँ उसकी सूचना-भर दी गई है ।

## व्यंग्यात्मक क्षण

पूर्व विवेचन में व्यंग्यात्मक क्षणों के सम्बन्ध में बताया जा चुका है । यहाँ इनकी चर्चा इस सन्दर्भ में हो रही है कि परिवेश चाहे कैसा भी हो - ग्रामीण, नगरीय, राजनीतिक, सांस्कृतिक, किन्तु व्यंग्यात्मक उपन्यासों

में उपन्यासकार का लक्ष्य ऐसे बिन्दुओं की तलाश है जो व्यंग्य को उभारने में सहायक होते है । "जल टूटता हुआ", "अलग अलग वैतरणी", "नदी फिर बह चली", "आधा गाँव" प्रभृति उपन्यासों का परिवेश ग्रामीण है और उनमें यदा-कदा व्यंग्यात्मक विवरण भी है, किन्तु उन उपन्यासों का रूपबन्ध व्यंग्यात्मक उपन्यासों जैसा नहीं है । जिस प्रकार समस्यामूलक उपन्यासों में उपन्यासकार का मूलभूत लक्ष्य समस्याओं के निरूपण में रहता है, मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक क्षण और स्थितियों के निरूपण में रहता है, ठीक उसी प्रकार व्यंग्यात्मक उपन्यासों में उपन्यासकार का लक्ष्य उसके समूचे परिवेश में से कतिपय व्यंग्यात्मक क्षणों की पड़ताल का होता है, बल्कि यों भी कह सकते हैं कि इन व्यंग्यात्मक क्षणों का निरूपण ही उपन्यास को व्यंग्यात्मक रूपबन्ध प्रदान करता है ।

कई बार किसी एक शब्द विशेष को लेकर उपन्यासकार को यह मौका मिल जाता है कि वह व्यंग्य की सृष्टि कर सके । "कुरू कुरू स्वाहा" की नायिका तारा झवेरी उपन्यास के नायक मनोहर श्याम जोशी[10] को कहती है :

"वह मुझे मालूम है । क्या तुम यह कहना चाहते हो कि तुम्हारी परीक्षिका खुद बोर्जेस[11] की नकल मार रही है मौलिक नहीं है "[12]

इस पर मि॰ जोशी कहते है : "उसकी स्त्रियोचित भावुकता बोर्जेस को नया आयाम दे रही है ।" तुरन्त उपन्यासकार इस क्षण को पकड़ लेता है और मिस झवेरी के द्वारा हमारी साम्प्रतिक साहित्यिक

आलोचना या प्राध्यापकीय - आलोचना पर एक फब्ती-सी कस देता है । मिस झवेरी तपाक् से कहती है :-

"आइन्दा के लिए याद रखो स्त्रियोचित भावुकता और आयाम जैसे शब्द बोलनेवाला व्यक्ति मौलिक नहीं हो सकता । तुम चौरासी लाखवीं कार्बन - कापी हो उस मूल पाठ की जिसे सँभालने लायक न समझकर फेंक दिया गया है ।"[13]

इसी उपन्यास में आधुनिक रचना पर रचना प्रक्रिया किस कदर हावी हो रही है उसका बड़ा ही व्यंग्यात्मक खाका खींचा गया है । नायक जोशीजी किसी कहानी की रचना के सन्दर्भ में पहले कुछ नोट्स तैयार करते है जिसमें देवी - काम्प्लेक्स, इस्को जोफ्रेनिक आघात, इलेक्ट्रा कोम्पलेक्स, ईरोस एण्ड थैण्टोस जैसे मानसशास्त्रीय शब्दों का प्रयोग हुआ है और उनका दावा है कि कहानी प्रगीतात्मक-सी होगी ।[14]

ठीक इसी बिन्दु पर व्यंग्यात्मक क्षण को उपलब्धि होती है और लेखक कलागत निरपेक्षता, ताटस्थ्य, भोगा हुआ यथार्थ आदि की रात-दिन चर्चा करने वाले हमारे आधुनिक लेखकों पर व्यंग्य कसना शुरू कर देते हैं, यथा --

"इसके बाद जोशीजी अतिरिक्त प्रेरणा के लिए फ्रायड के पास गये । फ्रायड अपनी दाढ़ी खुजला रहे थे और मन्द-मन्द मुस्कुरा रहे थे । मौनव्रत-सा लिये हुए थे शायद या कि अपनी रचना प्रक्रिया में व्यस्त । जोशीजी उनके साथ वीएना की एक सुनसान-सी सड़क पर, जिसके दोनों ओर साइप्रस के पेड़ थे (मृत्यु के प्रतीक) चहल कदमी

किया किये । बाबा फ्रायड कह कुछ नहीं रहे थे लेकिन आमतौर पर जोशीजी आदि नयी पीढ़ी के लेखकों से परम संतुष्ट प्रतीत हो रहे थे बुढ़ऊ । सहसा उन्होंने हाथ से इशारा किया - जाओ । बल्कि उसे भागो भी समझा जा सकता । जाओ, भागो, खेलो, कूदो, अब तुम लोगों का ही जमाना है, हम तो बुढ़ा गये - ऐसा कुछ कह रहे थे बाबा फ्रायड । कमसे - कम जोशीजी के अनुसार ।

"जोशीजी फ्रायड से बिदा लेकर कुछ देर इस सोच में पड़े रहे कि बाबा फ्रायड को खुश करते - करते कहीं मैं बाबा मार्क्स को नाखुश न कर दूँ ।

"वहाँ गेस्ट हाउस के कमरे के झरोखे में इस्पात की नीली कुर्सी में बैठे और नीली ही मेज पर पाँव पसारे जोशीजी ने वीएना से लन्दन जाने का प्रबन्ध किया -- बाबा मार्क्स से मिलने के लिए । बाबा, बिटिश म्यूजियम की लाइब्रेरी में एक पोथी पढ़ते पढ़ते सो गये थे । जोशीजी के आने से जागे । 'बोले, लेखक हो? तो कोल्डवेल पढ़ो, लूकाच पढ़ो, मुझे परेशान मत करो ।" "अब जोशीजी उसी चमत्कार से बाबा तालस्ताय के साथ खड़े हो गये । वोल्गा तीरे । चेखव भी वहीं थे । उन्होंने बाबा तालस्ताय को बताया -- जोशी एक पगली के चुम्बन पर प्रगीतात्मक कथा लिख रहा है । बाबा तालस्ताय ने पूछा -- यह जोशी चुम्बन - बुम्बन से आगे बढ़ा है उस पगली के साथ कि यों ही कहानी लिखने बैठ गया है ? और ये कहानियाँ ससुरी प्रगीतात्मक कब से होने लगीं ? "[15]

इस व्यंग्यात्मक कोण के निरूपण में लेखक ने फैन्टसी का सुन्दर प्रयोग किया है । "राग दरबारी" में निरूपित शिवपालगंज के नौजवान अपनी दैनंदिन अभिव्यक्ति में फंटूश, चकाचक, ताश, बाँगडू, लँगोटा, पन्सारना, हरामी जैसे शब्दों का भरपूर प्रयोग करते हैं । इसी संदर्भ में लेखक हमारे अधिकारी एवं तथाकथित साहित्यकारों पर व्यंग्य करते हुए कहता है : "सामने रास्ते से तीन नौजवान ज़ोर - ज़ोर से ठहाके लगाते हुए निकले । उनकी बातचीत किसी एक ऐसी घटना के बारे में होती रही जिसमें दोपहर, फंटूश, चकाचक, ताश और पैसे का जिक्र उसी बहुतायत से हुआ जो प्लानिंग कमीशन के -- अहलकारों में "इवैल्युएशन", "कोआर्डिनेशन", "डवटेलिंग" या साहित्यकारों में "परिप्रेक्ष्य", "आयाम", "युगबोध", "सन्दर्भ" आदि कहने में पायी जाती है ।"[16] इसी सन्दर्भ में कथा - सूर्य की नयी यात्रा" का एक प्रसंग भी उल्लेखनीय रहेगा । वहाँ कथा फैन्टसी के सहारे चलती है । हिन्दी का एक नवोदित मूल लेखक स्वर्ग में कथा-सूर्य प्रेमचन्द को मिलता है । दोनों में साहित्य - विषयक चर्चा चल पड़ती है । उसकी बातों को सुनकर प्रेमचन्द कहते हैं कि तुम तो आलोचक मालूम पड़ते हो । तब वह लेखक तपाक् से कहता है कि नहीं, नहीं, मैं आलोचक नहीं । मेरे पास आलोचक की भाषा कहाँ है ? तब प्रेमचन्दजी चौंककर पूछते हैं कि आलोचना करने के लिए अलग भाषा चाहिए । हमारे जमाने में तो हम जिस भाषा में कथा - उपन्यास आदि लिखते थे , उसी भाषा में आलोचना भी करते थे । तभी वह नवोदित लेखक प्रेमचन्दजी से कहता है : "अ हा हा ! यही तो आप

बुनियादी गलती कर रहे हैं। आलोचना करने के लिए शब्द - विशेष का उपयोग किया जाता है। जैसे; आयाम, प्रक्रिया, सन्तुलन, प्रतिमान केन्द्र-बिन्दु, परिवेश, साहित्यिक आस्फालन, बिम्ब, अणु बिम्ब, युगबोध, भाव-संघात, भाव धारा, परिपार्श्व, परिप्रेक्ष्य, नवचेतना, सामीप्य, आलंबन, प्रतिष्ठापना - उदात्तीकरण, लोक संवहन, व्यंग्य - व्यूह, अपरम्परा, उत्स, उद्भव और हो सके तो इंगलिश, लैटिन, फ्रेंच भाषाओं के कुछ ऐसे शब्द जो शीघ्रता से शब्दकोशों में न मिले।"[17]

"राग दरबारी" में एक स्थान पर सनीचर रंगनाथ से कहता है : "न जाने वह काना इस कुतिया को कहाँ से घसीट लाया है। जब निकलती है, कोई न कोई इसे छेड़ ही देता है।"[18]

यहीं से पंडित राधेलाल काना का प्रसंग शुरू होता है क्योंकि उपर्युक्त कथन में "काना" से सनीचर का तात्पर्य पंडित राधेलाल "काना" था। उसकी एक आँख दूसरी से छोटी थी और इसीसे ﴾शिवपालगंज निवासी﴿ उसे काना कहते थे। यहीं पर "परम्परा" शब्द को लेकर लेखक व्यंग्य की सृष्टि करता है : "यह हमारी प्राचीन परम्परा है, कि लोग बाहर जाते हैं और ज़रा-ज़रा-सी बात पर शादी कर बैठते हैं। अर्जुन के साथ चित्रांगदा आदि को लेकर यही हुआ था। यही भारवर्ष के प्रवर्तक भरत के पिता दुष्यन्त के साथ हुआ था, यही ट्रिनिडाड और टौबेगो, बरमा और बेंकाक जाने वालों के साथ होता था, यही अमरीका और यूरोप जानेवालों के साथ हो रहा है और यही पंडित राधेलाल के साथ हुआ। अर्थात् अपेने मुहल्ले में रहते हुए जो बिरादरी

के बाहर एक इंच भी बाहर जाकर शादी करने की कल्पना मात्र से बेहोश हो जाते हैं वे भी अपने क्षेत्र से बाहर निकलते ही शादी के मामले में शेर हो जाते है । अपने मुहल्ले में देवदास पार्वती से शादी नहीं कर सका और एक समूची पीढ़ी को कई वर्षों तक रोने का मसाला दे गया था । उसे विलायत भेज दिया जाता तो वह निश्चय ही बिना हिचक किसी गोरी औरत से शादी कर लेता । बाहर निकलते ही हमलोग प्राय: पहला काम यह करते हैं कि किसीसे शादी कर डालते हैं और फिर सोचना शुरू करते हैं कि हम यहाँ क्या करने आये थे । तो पंडित राधेलाल ने भी, सुना जाता है, एक बार पूरब जाकर कुछ करना चाहा था, पर एक महिने में ही वे इस "कुतिया" से शादी करके शिवपालगंज वापस लौट आये ।

"किसी पूर्वी जिले की एक शकर-मिल में एक बार पंडित राधेलाल को नौकरी मिलने की संभावना नज़र आयी । नौकरी चौकीदार की थी । वे वहाँ जाकर एक दूसरे चौकीदार के साथ रूक गये । तब पं॰ राधेलाल की शादी नहीं हुई थी और उनके जीवन की सबसे बड़ी समस्या यह थी कि औरत के हाथ का खाना नहीं मिलता । उनके साथी चौकीदार की बीबी ने कुछ दिनों के लिए इस समस्या को सुलझा दिया । वहाँ रहते हुए वे उसका बनाया हुआ खाना खाने लगे । और जैसे कि एक जगतप्रसिद्ध कहावत है, स्त्री पेट के रास्ते से आदमी के हृदय पर कब्जा करती है, उसने पं॰ राधेलाल के पेट में सुरंग लगा दी और हृदय की ओर बढ़ने लगी । उन्हें उसका बनाया हुआ खाना कुछ ऐसा पसंद आया और वह खुद अपनी बनायी हुई सुरंग में इस तरह फँस गयी कि

महीने-भर के भीतर ही वे उसे अपना खाना बनाने के लिए शिवपालगंज ले आये। चलते - चलते उसके घर से ही उन्होंने साल - दो साल के लिए खाने का इंतजाम भी साथ में ले लिया । इस घटना के बाद मिल के क्षेत्र में लोगों ने सोचा कि पं॰ राधेलाल का साथी चौकीदार उल्लू है । शिवपालगंज में गंजहों ने सोचा कि राधेलाल मर्द बच्चा है । अब तक उस क्षेत्र में पं॰ राधेलाल की प्रतिष्ठा "कभी न उखड़ने वाले गवाह" के रूप में थी, अब वे कभी न चूकनेवाले मर्द" के रूप में भी विख्यात हो गये ।"[19]

इस प्रकार यहाँ एक व्यक्ति विशेष और शब्द विशेष के माध्यम से लेखक ने व्यंग्यात्मक क्षणों को तलाश लिया है । एक अन्य सन्दर्भ में इसी उपन्यास में गुटबन्धी की बात आती है, जिसका विश्लेषण करते हुए लेखक उसे एक सामाजिक - मनोवैज्ञानिक समस्या करार देते हैं और उसका हल ढूँढने के लिए - दर्शनशास्त्र के स्थान पर हिन्दी कथा साहित्य पढ़ने की बात करते है । यहाँ पर उन्हें एक बिन्दु मिल जाता है और वे साम्प्रतिक कथा लेखन की कुछ गति विधियों पर व्यंग्य कसते हैं : "सभी जानते है कि हमारे कवि और कहानीकार वास्तव में दार्शनिक है और कविता या कथा साहित्य तो वे सिर्फ यूँ ही लिखते हैं । किसी भी सुबुक - सुबुकवादी उपन्यास में पढ़ा जा सकता है कि नायक ने नायिका के जलते हुए होठों पर होठ रखें और कहा, "नहीं - नहीं निशी, मैं उसे नहीं स्वीकार कर सकता । वह मेरा सत्य नहीं है । वह तुम्हारा अपना सत्य है ।" निशी का ब्लाउज़ जिस्म से चूकर गिर जाता है । वह अस्फुट स्वर में कहती है, "निक्कू, क्या तुम्हारा सत्य मेरे सत्य से

अलग है ? " x x x और इस तरह नंगापन, सुबुक-सुबुक, चूमाचाटी व्याख्यान आदि के माहौल में उस खरगोश का पीछा करते रहते हैं जिसका कि नाम सत्य है ।"[20]

तात्पर्य यह कि चाहे कोई भी परिवेश हो व्यंग्यात्मक उपन्यासों का लेखक व्यंग्य की सृष्टि के लिए ऐसे कुछ व्यंग्यात्मक क्षणों का चुनाव कर ही लेता है ।

## ग्रामीण परिवेश के व्यंग्यात्मक स्थल

"जल टूटता हुआ", "पानी के प्राचीर", "अलग अलग वैतरणी", "नदी फिर बह चली", "आधा गाँव" जैसे उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश को उसके समग्र रूप में लिया गया है । किन्तु "राग दरबारी", "सूखता हुआ तालाब", "इमरतिया", "जहर चाँदका", "नेताजी कहिन", प्रभृति व्यंग्यात्मक उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश के व्यंग्यात्मक स्थलों की ओर लेखक का ध्यान अधिक रहा है और व्यंग्यात्मक उपन्यास के रूपबन्ध को देखते हुए यह आवश्यक एवं स्वाभाविक भी है ।

यहाँ ग्रामीण जीवन के उन विभिन्न आयामों को विश्लेषित करने का प्रयत्न किया गया है जिनमें व्यंग्य के लिए अधिक गुंजाइश है । ये आयाम हैं :

§1§ नगरीय जीवन का दबाव,

§2§ सामन्त वादी जमींदारों के बदलते चेहरे,

§3§ पुलिस का रवैया

§4§ न्यायतंत्र और रिश्वतखोरी

§5§ चुनाव और गुटबन्दियाँ

§6§ स्त्री-पुरूषों के अनैतिक सम्बन्ध ।

§1§ नगरीय जीवन का दबाव :

पूंजीवादी व्यवस्था से उत्पन्न औद्योगीकरण ने नगरीकरण (Urbanalization) की प्रक्रिया को और गतिशील बना दिया है । गाँव टूट-बिखर रहे हैं, नगर बढ़ रहे हैं । इन बढ़ते हुए नगरों का और नगरीय जीवन का दबाव वा कुप्रभाव गाँवो के प्राकृतिक जीवन को विषाक्त बना रहा है । एक विचित्र भेड़ियाधसान चल रहा है । महा नगरीय उच्च वर्ग यूरोप - अमरीका का, मध्यवर्ग उस उच्चवर्ग का और ग्रामीण लोग मध्यवर्ग का अन्धानुकरण कर रहे हैं । आज भी बहुत से गाँवों में गाँव से शहर में गए लोगों के प्रति एक अहोभाव मिलता है । "धरती धन न अपना" के काली को दुकानदार छज्जूशाह इज्जत की नजरों से देखता है और "बाबू कालीदास" कहता है[2] क्योंकि वह शहर से आया है । वहीं स्थिति "राग दरबारी" के रंगनाथ, "टूटा हुआ आदमी" के धर्मनाथ और "नदी फिर बह चली" के जगलाल की भी है । कई बार ऐसे लोगों में शहरी जीवन मूल्यों के प्रति दबाव, शहर के मूल निवासियों से भी अधिक मात्रा में पाया जाता है । कहावत है नया मुल्ला ज्यादा नमाज़ पढ़े । उसी प्रकार ये लोग सवाई शहरी सिद्ध होने के फेर में अपनी मूल जमीन व वातावरण को भूल जाते हैं ।

"नदी फिर बह चली" का जगलाल जब शहर से आता है तब अपनी पत्नी पर शहरी छैला का सिक्का गालिब करने के हेतु सौन्दर्य प्रसाधन के साधनों में "क्रीम" और "पौडर" खास लाता है ।[22] जब वह परबतिया को अपने साथ शहर ले जाता है तब उसकी यह दिली इच्छा रहती है कि परबतिया भी अन्य शहरी स्त्रियों की तरह अपने अंगों का प्रदर्शन करे । "परबतिया" की मर्यादाशीलता से वह चिढ़ता है, वह चाहता है कि उसकी पत्नी न केवल उसके दोस्तों की गन्दी फूहड़ मज़ाक बरदाश्त करें, बल्कि उसमें सक्रिय सहयोग भी दें क्योंकि उसीमें उसे शहरीपन दिखता है । वह उसे बीडी पीने का आग्रह इसीलिए करता है कि शहरों में एक विशिष्ट वर्ग की स्त्रियाँ "स्मोकिंग करती हैं ।

डॉ• राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यास "दिल एक सादा कागज़" में शहरी जीवन - मूल्यों के दबाव को बड़े ही व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है । उस उपन्यास में नारायणगंज के पास एक नयी बस्ती जवाहरनगर उभर आयी है । साहित्य और कला का प्रचार वहाँ बतौर फैशन हो रहा है । किसी प्रबुद्ध व्यक्ति के मुँह से किसी पुस्तक का नाम निकल जाय तो दूसरे दिन वह किताब अनेक लोगों की लाइब्रेरी में पहुँच जाती है । वहाँ की फैशनेबुल औरतें "बीफ" इसलिए खाती हैं ताकि उनकी परिगणना "मोडर्न" और "एडवान्स" लोगों में होती रहे ।[23]

जवाहरनगर में इस "ब्राड माइन्डनेस" की एक स्पर्द्धा मची हुई थी । बेल बाटम, एलिफन्ट ट्राउजर, जीन्ज, हिप्स्टर साडियाँ, ऊँची चोलियाँ, स्पोर्ट शर्ट, टेनिस, बैडमिन्टन, स्वीमिंग, स्टीरियो फ्रोनिक

म्युज़िक, अली अकबर, रविशंकर, फय्याज खॉं, बडे गुलाम अली खॉं, महदी हसन यह सब वहॉं की नकली जीवन प्रणाली के अंग हो गये हैं। ऐसा नहीं है कि इन सबकी सही - समझदारी इनमें है। स्वयं उपन्यासकार के शब्दों में "इन औरतों की ट्रेजिडी यह थी कि इनकी कमर से नीची बँधी हुई साड़ियाँ और बेहद नीची नेक-लाइन के ब्लाउज़ों और फीकी लिपस्टिक के बावजूद इनकी आत्माएँ पुरानी थीं। यह अन्दर से खूसट बुढियाएं थीं।[24]

शहरी मूल्यों के दबाव ने गाँवो के मेले-ठेले और तीज-त्योहारों को भी उल्लासहीन बना दिया है। मेला तो ग्रामीण जीवन का दर्पण होता है। परन्तु अब यन्त्र ने मनुष्य को भी यन्त्र बना दिया है। "साँप और सीढी" के नगेन बाबू ठीक ही कहते हैं कि असल में वह धुरी ही नहीं रही जिसमें ऐसे मेले-ठेले चलते थे। मेले तो अब भी होते हैं, परन्तु अब वहाँ लुच्चई, नगई और गुण्डागर्दी खुलेआम होती है, जिसमें सनीचर जैसे लोग अपने "हेरा-फेरी" का चमत्कार बताने में जुट जाते हैं: "उसने सैकडों बुड्ढों को दाये-बायें फेंका, कई औरतों के कन्धों पर प्रेम से हाथ रखा, उनकी छातियों के आकार-प्रकार का हालचाल लिया और यह सब ऐसी निस्संगता के साथ किया जैसे भीड़ से निकलने के लिए ऐसा करना धर्म में लिखा हो।"[25]

ग्रामीण जीवन में आये इस बदलाव को यदि देखना हो तो "जल टूटता हुआ" और "राग दरबारी" में निरूपित मेलों के वर्णन को देख लेना चाहिए।

"नदी फिर बह चली" की परबतिया जब कई वर्षों बाद गाँव में लौटती है तब उसे आल्हा-उदल, ननदी-भउजइया, लोरिक - सँवरू जैसे लोक गीतों के स्थान पर फिल्मी गीतों की धुनें सुनने को मिलती है। वह देखती है कि चौदह पन्द्रह साल का लड़का खेतों के किनारे - किनारे फिल्मी गीत गाते हुए बगीचें की ओर जा रहा है। यथा --

"आग लगी तन मनमें, दिल को पड़ा थामना
राम जाने कब होगा, सइयांजी का सामना ।[26]

कबीर, जोगीडा, रामायण, मीरा, दादू, कमाल, पल्टू आदि सन्तों के भजनों के स्थान पर अब गाँव के भजनों में फिल्मी धूनें चलने लगी है। यथा --

"लेके पहला पहला प्यार, तज के ग्वालों का संसार
मथुरा नगरी में आया है, कोई बंसीधर ।"[27]

तात्पर्य यह कि शहरी प्रभावों से हमारे गाँव बुरी तरह से आक्रान्त हैं और फलत: वे अपनी प्राकृतिक, स्वाभाविक छवि को छोड़ते जा रहे हैं। यह अधकचरी नकल उन्हें हास्यास्पद बना रही हैं।

(2) सामन्त वादी जमींदारों के बदलते चेहरे :

प्रजातंत्र के आने और जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के साथ सामन्तवादी मूल्य समाप्त हो गये यह कहना कुछ अतिशयोक्ति पूर्ण होगा क्योंकि आज भी गाँवो में बड़े बड़े जमींदार हैं। बिहार जैसे राज्य में तो इन जमींदारों के पास अपनी - अपनी सेनाएं भी हैं। वस्तुत: इन लोगों ने जब देखा कि

भारत स्वतंत्र हो जायगा, तब उन्होंने लोकतान्त्रिक मुखौटे धारण कर लिए । रातोंरात राय साहबी का खिताब लौटाकर वे परम देशभक्त हो गये । "अलग अलग वैतरणी" के जैपाल सिंह, "जल टूटता हुआ" के महीपसिंह, "दिल एक सादा कागज" के ठाकुर साहब तथा "राग दरबारी" के वैद्यजी जैसे लोगों ने ऊपर - ऊपर से लोकतान्त्रिक मूल्यों का मुखौटा ओढ़ लिया है, परन्तु उनकी सामन्तवादी कार्य - प्रणालियों में कोई अन्तर नहीं आया है । वैद्यजी शिवपालगंज के सर्वे सर्वा है । उनकी इच्छा के खिलाफ शिवपालगंज में एक पत्ता भी नहीं हिल सकता । कोई सिरफिरा अधिकारी यदि उनकी बात मानने से इन्कार कर दे तो उसका तबादला हो जाता है ।

"दिल एक सादा कागज़" के ठाकुर साहब को यह गवारा नहीं कि केला जैसा एक सामान्य आदमी ठीक उनके जैसा पाखाना बनवाये । लेखक के ही शब्दों में "माना कि जमींदारी खत्म हो चुकी है । फिर भी साहब मरा हाथी लाख टके का होता है । ठाकुर साहब फिर ठाकुर साहब थे । और इसलिए बात बिगड़ गयी । ठाकुर साहब तन गये कि पाखाना नहीं बनेगा । बायें बाजू की पार्टियां यह तय नहीं कर पा रही थीं कि यह सामराज विरोधी लड़ाई है कि नहीं । कांग्रेस सन्नाटे में थी कि वह ठाकुर साहब को नाखुश करना नहीं चाहती थी परन्तु यह भी नहीं चाहती थी कि लोग यह कहें कि कांग्रेस केला के साथ न होकर ठाकुर साहब के साथ है क्योंकि इस कानस्टिटएन्सी में ठाकुर वोट न होने के बराबर थे । तो इस क्षेत्र के एम.एल.ए. साहब लखनऊ में

आराम से बीमार पड़ गये । एम० पी० साहब महाराष्ट्र में बाढ-पीड़ित क्षेत्रों का दौरा करने चले गये । जनसंघ हैरान कि किसका साथ दें । ऊँची जाति के हिन्दू का साथ देती है तो नीची जातिवाले और खफ़ा हो जायेंगे ।"[28]

यहाँ पर सामन्तवादी मनोवृत्ति का दिग्दर्शन तो हुआ ही है, साथ में हमारी राजनीतिक पार्टियों की वोट परस्ती का भी अच्छा-खासा-मखौल उड़ाया गया है ।

इन पुराने सामन्तवादी जमींदारों के वर्ग के साथ आज़ादी के बाद गाँवों में एक नया वर्ग - नव धनिक वर्ग (Neo Capitialist) उभरा है जो गरीबों पर अत्याचार करने में जमींदारो के भी कान काट रहे हैं । "अलग अलग वैतरणी" के जग्गन मिसिर का यह कथन कितना उपयुक्त है : "पहले गाँव में जुलुम जमींदार के लोग करते थे । कारिन्दा, सीरवाह, पटवारी, अमीन, कानूनगो सबकी मिली भगत थी । ..... (पर अब) अचंभा ई देखकर होता है कि जिन पर उस वक्त जुल्म होता था वे ही आज जालिम बन गये हैं । छुटभइये लोग दो पैसे के आदमी हो गए, तो आँख उल्ट गयी । आज जुल्म कौन करता है गाँवो में ? वही छुटभइये जो पहले जमींदारी के बूटों से रौंदे जा रहे थे । अब छुटभइये गोल बनाकर अपने से कमजोरों, गरीबों को सताते हैं ।"[29]

"आधा गाँव" के परूसराम, "जुलूस" के तालेवर गोढ़ी, "जल टूटता हुआ" के दीन-दयाल तथा "अलग अलग वैतरणी" के देवी चौधरी और सुरजूसिंह ऐसे ही नव धनिक वर्ग के लोगों में से है जिनके पास पैसों की

ताकत तो है पर पुश्तैनी संस्कार नहीं है । ये लोग और भी भयंकर है क्योंकि उनके पास शारीरिक शक्ति है क्रूर मस्तिष्क है, अमानवीय मूल्य है, अमर्यादित धन है और इन उपकरणों के माध्यम से उन्होंने शासन को भी निस्तेज बना दिया है ।

§3§ पुलिस का रवैया :

आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी गाँववालों के प्रति पुलिस के रवैये में कुछ खास परिवर्तन आया नहीं है । गाँव का सामान्य आदमी आज भी पुलिस से आतंकित रहता है । यही कारण है कि पुलिस इंस्पेक्टर का रूतबा गाँवों में किसी कलेक्टर से कम नहीं होता । गाँव का सत्ता - संपन्न वर्ग पुलिस के अधिकारियों की दावत करके तथा रिश्वत और तिकड़मों के नये तौर-तरीकों से पुलिस को अपने वश में कर लेता है । फिर उसी शक्ति पर वे दीन-हीन, निम्न गरीब, शोषित वर्ग के लोगों को पीड़ित व आतंकित करते हैं । "सूखता हुआ तालाब" का दयाल तो पुलिस का एजन्ट ही माना जाता है और इसी कारण वह गाँव के अन्य लोगों को दबाता भी है ।

"राग दरबारी", "आधा गाँव", "कभी न छोडे खेत", "सबहिं नचावत राम गोसाईं", "उग्रतारा", "इमरतिया" प्रभृति उपन्यासों में पुलिस के इस रवैया का व्यंग्यात्मक चित्रण उपलब्ध होता है । इसका एक दूसरा पक्ष यह भी है कि गाँवों में कुछ लोग इतने शक्ति - संपन्न होते हैं कि पुलिस उनके हाथों का खिलौना - मात्र बनकर रह जाती है । "राग दरबारी" के वैद्यजी की बात को न मानने पर एक पुलिस अधिकारी

को ऐसी दुलत्ती खानी पड़ती है कि उसकी तबीयत दुरुस्त हो जाती है। झूठे गवाहों को इजलास में खड़ा करके वे उस अधिकारी को ऐसे घर दबोचते है कि बेचारे का तबादला हो जाता है। राजनीतिक प्रभाव भी इसमें काम करता है। कोई अधिकारी यदि सख्ती बरतता है और इनकी उँगलियों पर नहीं नाचता तो राजनीतिक दबाव लाकर उसे ऐसे दूर के स्थान पर फिंकवा दिया जाता है कि शनैः शनैः उसका धैर्य भी टूटने लगता है।

"सबहिं नचावत राम गोसाईं" के मुंशी हरदयाल को अपनी कोठरी इसलिए बेचनी पडती है कि उसने सौ रुपये का गबन किया था, जिसमें पकड़े जाने पर थानेदार हजार रूपया माँगता है क्यों कि जुर्म बड़ा संगीन है।[30] इसी उपन्यास में मेवालाल की जाल साजी वाला प्रसंग भी आता है जिसका बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्र लेखक ने खींचा है। "उस दिन मेवालाल को स्वयं कचहरी जाना पड़ा। जाली दस्तावेज बनाने में मुनीमजी से कुछ गड़बड़ी हो गयी थी और मेवालाल पर जाल साजी का मुकदमा चला दिया था पुलिसने, क्योंकि कोतवाल साहब नये नये आये थे। मेवालाल को उनकी सेवा करने का अवसर ही नहीं मिला था। भगवान की कृपा से एक हजार की रिश्वत देंने से मेवालाल बरी हो गये, लेकिन उनके मुनीम को तीन साल की सजा हो गयी।"[31]

कई बार राजनीतिक गुटबन्दियों में भी पुलिस का सहयोग लिया जाता है। "आधा गाँव" के परूसराम की राजनीतिक "कैरियर" खत्म करने के लिए पुलिस की सहायता से एक औरत पर "जिना" करने का

झूठा मुकदमा गढ़ा जाता है ।[32] गाँवों में आये दिन चलती रहनेवाली फौजदारियों के मूल में भी पुलिस का सहयोग ही है, जिसका बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्रण रज़ा के उक्त उपन्यास में हुआ है । कई बार पुलिस को दोनों ओर से रिश्वत मिलती है ।

"कभी न छोड़े खेत" का हवालदार अपने भ्रष्टाचार को भी न्यायोचित ठहराते हुए कहता है : "और तो सब ठीक है, लेकिन मेरे लिए दो सौ रूपये कम है । दो सौ रूपये तो हौलदारी के हो गये । दो सौ रूपया अलग कलम घिसाई का भी होना चाहिए । सारी रिपोर्ट तो मैं ही लिखूँगा । थानेदार तो सिर्फ उस पर दस्तखत करेगा ।"[33]

नागार्जुन द्वारा लिखित उपन्यास "इमरतिया" में पुलिस भ्रष्टाचार के कई नये आयाम दृष्टिगोचर होते हैं । जमनिया मठ के बाबा लोगों में अपनी धाक जमाने के लिए "बाल मेघ" का अनुष्ठान करते हैं । किसी तरह यह बात थानेदार तक पहुँच जाती है तब बाबा के एक भक्त - भगौती प्रसाद मठ की एक खूब सूरत सधुआइन गौरी को लेकर थाने में पहुँच जाते हैं । दोनों चार दिन वहाँ रहे और फिर खुशी-खुशी लौट आये । पुलिस के रेकोर्ड में दर्ज हुआ : "पूजा की आठवीं रात में न जाने किधर से एक पगली आयी । उसकी गोद में छ: महिने का बच्चा था । पुजारी की नज़र बचाकर उसने बच्चे को हवन-कुण्ड में डाल दिया । कोशिशें तो काफी की गयीं लेकिन बच्चे को बचाया नहीं जा सका । बाबा की बड़ी ख्वाहिश थी कि पगली को थाने तक पहुँचा दिया जाए, लेकिन अगले दिन ही वह गायब हो गयी ।

अब कुछ गुण्डों ने उल्टी बातें फैला दी हैं । सरकार बहादूर से अर्ज है कि वह जमनिया मठ के संत शिरोमणि बाबाजी महाराज की प्रतिष्ठा और इज्जत को ध्यान में रखें ।"[34] ऐसी ही घटनाएं व्यंग्यात्मक परिवेश को उभारती हैं ।

§4§ न्यायतंत्र और रिश्वतखोरी :

रिश्वत और भ्रष्टाचार की लपेट से हमारा न्यायतंत्र भी मुक्त नहीं है । जगदीश चन्द्र कृत "कभी न छोडे खेत" में यह बताया गया है कि जज रिश्वत लेकर फैसला रिश्वत देनेवाले के पक्ष में करते हैं । "इस मुल्क में सब कुछ हो सकता है, बस कीमत देनी पडती है ।"[35] इसी उपन्यास में रिश्वतखोरी का एक नया कोण देखने को मिलता है । डॉक्टर को झूठी रिपोर्ट लिखने के लिए तथा झूठी रिपोर्ट न लिखने के लिए दोनों के लिए रिश्वत दी जाती है ।

आश्चर्य तो इस बात का होता है कि इस रिश्वतखोरी के भी "रेट" बंधे हुए हैं । राग दरबारी का लंगड नकल के लिए महीनों कचहरी के धक्के खाता है, पर इसे नकल नहीं मिलती क्योंकि नकल नवीस पाँच रूपया माँगता था जब कि बकौल लंगड के "रेट" दो रूपये का है । इसी पर बहस हो गई । लंगडने कसम खायी कि "मैं रिश्वत न दूंगा और कायदे से ही नकल लूंगा, उधर नकल बाबू ने कसम खायी कि मैं रिश्वत न लूंगा और कायदे से ही नकल दूंगा । इसी की लड़ाई चल रही है ।"[36] इसका बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्रण लेखक ने दिया है ।

"रंगनाथ ने इतिहास में एम॰ए॰ किया था और न जाने कितनी लड़ाइयों के कारण पढ़े थे। सिकन्दर ने भारत पर कब्जा करने के लिए आक्रमण किया था, उसका कब्जा न होने पाए, इसलिए पोरसने प्रतिरोध किया था। इसी कारण लड़ाई हुई थी। अलाउद्दीन ने कहा था कि मैं पद्मिनी को लूँगा, राणा ने कहा था कि मैं पद्मिनी को नहीं दूँगा। इसलिए लड़ाई हुई थी। सभी लड़ाईयों की जड़ में यही बात थी। एक पक्ष कहता था, लूँगा, दूसरा कहता था, नहीं दूँगा। इसी पर लड़ाई होती थी। पर यहाँ लंगड़ कहता था, धरम से नकल लूँगा,। बाबू कहता था, धरम से नकल दूँगा। फिर भी लड़ाई चल रही थी।"[37]

रिश्वत का यह विष समाज में इतना फैल गया है कि लोगों को अब उसमें बुराई नहीं दिखती, बल्कि कई बार उसे वे न्याय संगत ठहराने का यत्न भी करते हैं। "राग दरबारी" का रूप्पन इस पर व्यंग्य करते हुए कहता है कि "इस देश में लड़कियाँ ब्याहना भी चोरी करने का बहाना हो गया है। एक रिश्वत लेता है तो दूसरा कहता है क्या करे बेचारा। बड़ा खानदान है, लड़कियाँ ब्याहनी हैं। सारी बदमाशी का तोड़ लड़कियों के ब्याह पर होता है।"[38]

गाँवो में कुछ लोगों का तो गुजर ही मुकदमेबाजियों पर चलता है। इस सन्दर्भ में "धरती धन न अपना" के नत्थासिंह तथा "राग दरबारी" के पण्डित राधेलाल काना के उदाहरण उल्लेखनीय हैं। पण्डित राधेलाल काना तो गवाही देने की मानों "प्रेक्टिस" ही

करते हैं । अपने क्षेत्र में वे "न उखड़नेवाले गवाह" के रूपमें प्रसिद्ध थे । झूठी गवाही देने में उन्होंने वह महारत हासिल की थी कि बड़े से बड़ा वकील भी उन्हें जिरह में उखाड़ नहीं सकता था । लेखक के ही शब्दों में "जिस तरह कोई भी जज अपने सामने के किसी भी मुकदमे में फैसला दे सकता है, कोई भी वकील किसी भी मुकदमे की वकालत कर सकता है, वैसे ही पण्डित राधेलाल किसी भी मामले के चश्मदीद गवाह बन सकते थे । संक्षेप में, मुकदमेबाज़ी की जंजीर में वे भी जज, वकील, पेशकार आदि की तरह एक अनिवार्य कड़ी थे और जिस अंग्रेजी कानून की मोटर पर चढ़कर हम बड़े गौरव के साथ "रूल ओफ लॉ" की घोषणा करते हुए निकलते हैं, उसके पहियों में वे टाईराड की तरह बँधे हुए उसे मनमाने ढंग से मोड़ते चलते थे । एक बार इजलास में खड़े होकर जैसे ही वे शपथ लेते "गंगा कसम, भगवान कसम, सच सच कहेंगे" वैसे ही विरोधी पक्ष से लेकर मजिस्ट्रेट तक समझ जाते कि अब यह सच नहीं बोल सकता । पर ऐसा समझना बिलकुल बेकार था, क्योंकि फैसला समझ से नहीं कानून से होता है और पं॰ राधेलाल की बात समझने में चाहे जैसी लगे, कानून पर खरी उतरती थी ।"[39]

## (5) चुनाव और गुटबन्दियाँ :

पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि राजनीति की काली अन्धी छाया ने देश के समग्र वातावरण को दूषित कर रखा है, गाँव भी उससे अछूते नहीं है । "राग दरबारी" में कॉलेज के मैनेजर का चुनाव गुण्डागर्दी और तमंचे के बल पर होता है । जिस प्रकार "अलग-अलग वैतरणी" के

जैपालसिंह सुरजूसिंह को हराने के लिए सुखदेवराम को खड़ा करते हैं, क्योंकि सुखदेवराम जैपालसिंह के आदमी है, उसी प्रकार "राग दरबारी" के वैद्यजी सरपंच के लिए सनीचर को खड़ा करते हैं। सनीचर जैसा अभद्र, अशिक्षित एंव मुर्ख व्यक्ति, जो कि वैद्यजी के दरबार में अण्डरवेयर पहनकर भाँग घोंटता रहता है, सरपंच के पद पर चुन लिया जाता है यह तथ्य ही अपने आप में व्यंग्यात्मकता को उभारने वाला है तथा सूचित करता है कि आज़ादी के बाद हमारे देश का शासन कैसे - कैसे भ्रष्ट एंव नितान्त अनुपयुक्त लोगों के हाथों में सिमट रहा है।

इसमें चुनाव के विभिन्न हथकण्डों का व्यंग्यात्मक चित्र उपस्थित करने हेतु "चुनाव-संहिता" की तीन युक्तियाँ बतायी हैं -- एक रामनगरवाली दूसरी नेवादावाली और तीसरी महिपालपुरवाली।"[40] रामनगरवाली युक्ति के अनुसार विरोधी दल के प्रभावशाली तत्त्वों को फौजदारी के माध्यम से जेल में ठूँसवाकर एक पक्षीय प्रचारकार्य होता है। नेवादावाली युक्ति में किसी महात्मा को निमन्त्रित कर उनके द्वारा भविष्य कथन करवाया जाता है और इस प्रकार गाँव के धर्मान्ध और धर्मभीरू लोगों को अपने पक्ष में करवा लिया जाता है। ठीक इसी प्रकार की युक्ति "प्रेम अपवित्र नदी" (लक्ष्मीनारायणलाल) में भी दृष्टिगत होती है। महिपालपुरवाली पद्धति के अनुसार चुनाव अधिकारियों को अपने पक्ष में करके एक सीमित समय में चुनाव संपन्न कर लिया जाता है। सनीचर महिपालपुरवाली प्रयुक्ति से विजयी हुए थे। वस्तुत: इसके द्वारा लेखक बड़े व्यंग्यात्मक ढँग से यह सूचित करना चाहते हैं कि हमारे देश में चुनाव

किन परिस्थितियों में होते हैं । जातिवाद, धर्म, संप्रदाय, दारू, पैसा, गुण्डागर्दी इन सभी तत्वों को आवश्यकतानुसार प्रयोग में लाया जाता है ।

"जल टूटता हुआ" के दीनदयाल चुनाव स्थल पर गट्टे और गुड़ की दूकान लगवा देते है और औरतों में प्रचार करने के लिए दल सिंगार मउगे का प्रयोग किया जाता है जो कमर नचाता हुआ औरतों के झुण्ड में प्रचारार्थ घूमता रहता है । "नदी फिर बह चली" में जातिवाद का घिनौना रूप सामने आता है । बिहार राज्य में वैसे भी जातिवाद अपनी पराकाष्टा पर है । मुखिया के चुनाव में गाँव के एक स्थापित हित जैसे जनार्दन राय का मैट्रिक-फेल भतीजा खड़ा रहता है तब राजपूत दल के लोग प्रचार करते हैं -- "यदि हम लोगों ने जनार्दनराय के भतीजे को मुखिया चुन लिया तो राजपूतों का हाल कुत्तों का हाल हो जायगा । अगर जात और मूंछ की लाज रखनी है तो राजपूत को मुखिया बनाओं ।"[41] फलत: राजपूत उम्मीदवार बाबू तेगासिंह चुनाव जीत तो जाते हैं परन्तु बाद में इस गुटबन्धी के कारण उनकी हत्या कर दी जाती है ।

इन राजनीतिक गुटबन्दियों का बड़ा ही जटिल स्वरूप "सूखता हुआ तालाब" में दृष्टिगत होता है । स्त्री-पुरुष के यौन-सम्बन्ध तथा भूत-प्रेत एवं ओझा-सोखागिरी भी यहाँ राजनीति द्वारा परिचालित होते हैं । देव प्रकाश के भाई अवतार का पड़ोसी गाँव की पासिन के साथ अनैतिक सम्बन्ध हैं । विरोधी गुट के नेता उसे रंगे हाथों पकड़वाकर देव प्रकाश के परिवार को पट्टीदारी से बहिष्कृत कर देते हैं । यह

करनेवाले नेताओं का नैतिक मूल्य कोई बहुत ऊँचा हो ऐसा नहीं है, बल्कि ये इसलिए ऐसा करते हैं कि देव प्रकाश शिवराम, शाम देव, धर्मेन्द्र जैसे नेताओं के गुट में मिलते नहीं है । दलबन्धी की राजनीति ने समग्र गाँव के वातावरण को इतना दूषित कर दिया है कि देवप्रसाद जैसे सच्चरित्र व्यक्ति में भी एकबार यह विचार कौंध जाता है कि रमदौना अहिर यदि धर्मेन्द्र की बहिन लीला को भगाकर ले जाय तो अच्छा रहे क्योंकि उससे उनके विरोधियों का मुँह काला होगा । इसी उपन्यास में कामरेड मोतीलाल को नीचा दिखाने के लिए बनारसी जलेसर की सहायता से "पेट मडुआ"[42] वाले प्रसंग की नियोजना करता है । तात्पर्य यह कि ग्रामीण देवता डीहबाबा आदि को भी राजनीति में घसीटा जाता है ।

§6§ स्त्री-पुरुषों के अनैतिक सम्बन्ध :

(Adulteration) स्त्री-पुरुष के अनैतिक सम्बन्ध आदि-अनादि काल से चल रहे हैं,[43] कदाचित इसीलिए हमारे काव्यशास्त्रों में परकीया के जितने भेद मिलते है, उतने स्वकीया के नहीं । परन्तु पहले इन सम्बन्धों में गोपनीयता एवं उत्तरदायित्व के तत्त्व भी निहित थे जब कि आजकल प्रचार, प्रदर्शन एवं गैर जिम्मेदारी का आधिक्य बढ़ रहा है । राजनीति के प्रवेश ने इसकी जटिलता को अनेक गुना बढ़ा दिया है ।

ग्रामीण परिवेश में स्त्री-पुरुष के अनैतिक सम्बन्धों का निरूपण "मैला आँचल" में पुष्कल परिमाण में उपलब्ध होता है, किन्तु रेणु के उपन्यास "जुलूस" में इस यौन-अनैतिकता का एक नया कोण उपलब्ध होता है ।

इस एपन्यास का तालेवर गोढ़ी निम्न जाति का है किन्तु पैसे की शक्ति एंव तंत्र-मंत्र के डर से उसने समग्र गाँव पर अपना आधिक्य जमा रखा है । जयरामसिंह की सहायता से वह गाँव की लड़कियों को तांत्रिक साधना के नाम पर फंसाता है । एक स्थान पर वह जयरामसिंह को कहता है : "हम जो साधना करते हैं उसके लिए औरत बहुत जरूरी है । तन्त्र सिद्ध करने के लिए "भैरवी" का होना बहुत जरूरी है ।"[44] गुणमन्ती, रेशमी-सिंगारो, गौरी यह सब गाँव की लडकियाँ उसकी भैरवियाँ रह चुकी हैं ।[45] अपनी पतोहू से भी उसका लाट-साट चल रहा है ।

'सबहिं नचावत राम गोसाईं' के बाबा सहोदरानंद धर्म एंव मंत्र तंत्र के नाम पर गाँव की स्त्रियों को फांसने का कार्य करते है । धर्म के नाम पर कैसी - कैसी लीलाएँ चलती हैं उसका बड़ा ही मनोरंजक एंव व्यंग्यपूर्ण चित्र यहाँ उपस्थित हुआ है । एक स्थान पर बाबा कहते है : "ठकुराइन । आज अमावस है । शाम को झुटपुटे में आना - आज हम तुम्हें बीज मन्त्र देंगे ।" शाम के समय ठकुराइन के वहाँ पहुँचने पर बाबा सहोदरानन्द कहते है : " ठकुराइन । मैं शिव हूँ - तू पार्वती है । आज शिव - पार्वती की पूजा करेगा ।" x x x (उसने एक बार अपने को बाबा सहोदरानन्द से छुड़ाने की कोशिश की, लेकिन उसे लगा जैसे उसके शरीर की सारी शक्ति निचुड गयी है । और उस रात बाबा सहोदरानन्द ने भमरी को (ठकुराइन को) बीजमंत्र दे दिया ।"[46]

नागार्जुन कृत "इमरतिया" में इन अनैतिक सम्बन्धों का एक नया रूप मिलता है । जमनिया मठ के बाबा नि:संतान स्त्रियों को बेंत -

छुआकर उनकी गोद हरी करने के चमत्कार के लिए प्रसिद्ध है । कितनी ही स्त्रियों की गोदें उन्होंने बेंत छुआकर संतान कामना से भर दी थी । इसका व्यंग्यात्मक एवं सांकेतिक चित्रण नागार्जुन ने किया है । वस्तुत: बाबा के इस चमत्कार के पीछे लालताप्रसाद, भगौतीप्रसाद, सुखदेव - राम-भजन जैसे मठ के कर्ता-हर्ता लोगों की एक पूरी "मशीनरी" काम करती थी । "यही लोग ठूँठ की कोख से पौधा पैदा करने की विद्या जानते थे । पत्थर पर दूब जमाने की हिकमत इन्हीं लोगों को मालूम थी ।"[42]

रेणु कृत "जुलूस" में दीक्षा की माँ सरस्वती रामगंज - पिपरा में अध्यापिका थी तब एक स्कूल इन्सपेक्टर ने उसे प्रधान अध्यापिका बनाने की लालच देकर "प्रेगनेण्ट" बना दिया था । बाद में गाँव के ही एक युवक पारस प्रसाद (जिसे व्यंग्य में लोग पारसल प्रसाद कहते थे) की सहायता से एक अंग-भंग व्यक्ति से उसका विवाह हो जाता है । थोड़े ही महीनों में पारसप्रसाद की ही सहायता से वह विधवा भी हो जाती है । किसी हट्टे कट्टे नौजवान से एकान्त में आमने - सामने होने पर उसकी "रीढ़ का दर्द चिनचिनाता है ।"[48] पारसप्रसाद, पहलवान जेठ, कारे (नौकर) मंडल तथा रामजयसिंह आदि से वह उसका इलाज करवाती रहती है । कांग्रेस के एक स्थानीय नेता छोटन बाबू के सम्बन्ध में वह कहती है : "रामदेव बाबू लोकल बोर्ड के चेरमैन और यह शैतान उसका दलाल । कितनी - मास्टरनियों को डाक बंगला तक भुलावे में डालकर ले गया - इसका हिसाब उससे किसी दिन भगवान ही

पूछेगी ।"[49] इस प्रकार के अनैतिक व्यापारों में बेकारी एवं दरिद्रता भी एक कारण है । कईबार स्कूल अध्यापिकाओं तथा ग्राम सेविकाओं को न चाहते हुए भी गाँव के बड़े लोगों से ऐसे सम्बन्ध रखने पड़ते हैं ।

उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्ष पर यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण परिवेश की उक्त स्थितियों का व्यंग्यात्मक आकलन उपन्यासकारों ने किया है ।

## नगरीय परिवेश के व्यंग्यात्मक स्थल

यद्यपि जीवन की सामान्य प्रवृत्तियाँ सभी स्थानों पर सामान्य-सी मिलती है, तथापि परिवेशगत विभिन्नता के कारण जीवन रीतियों एवं प्रणालियों में कुछ अन्तर तो अवश्य परिलक्षित किया जा सकता है । अतएव ग्राम एवं नगर के परिवेशगत अन्तर के कारण व्यंग्यात्मक स्थितियों में भी कुछ अन्तर मिलता है । औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात ग्राम नगराभिमुख हो रहे हैं । बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली जैसे महानगरों में प्रतिदिन हजारों लोग रोजगार की तलाश में आते हैं । आज विश्व के सभी देशों में नगरीकरण की गति ऐसी तीव्र है जैसी पहले कभी नहीं रही । पिछले कुछ वर्षों में विश्व की शहरी आबादी तीव्र गति से बढ़ रही है । केवल 1961 से 1981 तक के अंकों को लिया जाय तो 1961 में शहरी आबादी कुछ जनसंख्या के 17•97 / थी,[50] जो अब 1981 में 23•31 / हो गई और 1988-89 तक वह गालिबन 30 प्रतिशत तक हो जायेगी ।[51] फलत: महानगरों की समस्याए विकटतम रूप धारण कर रही हैं । महानगरीय जीवन की यह जटिलताएं व्यंग्य को भी जन्म देती हैं ।

यहाँ नगरीय परिवेश के कुछ ऐसे ही व्यंग्यात्मक स्थलों के निर्देश का उपक्रम है, यथा :- §1§ टूटते बिखरते जीवनमूल्य, §2§ यांत्रिक जीवन की त्रासदता §3§ उच्च समाज की रंगीनियाँ §4§ भौतिक समृद्धि की अंधी दौड़, §5§ व्यापक भ्रष्टाचार, §6§ निम्न समाज का नरक, §7§ शहरों में पुलिस का अभिगम, §8§ मध्यवर्ग की प्रदर्शनप्रियता, §9§ साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक मूल्यों में पतन की स्थिति ।

:1: टूटते बिखरते जीवन मूल्य :

पहले आदमी स्थायी था, अब भ्रमणशील । व्यक्ति अपने स्थान एवं परिवेश से कटकर दूर-दूर नगरों में जा बसा है, जहाँ उसे अब पुराने ग्रामीण मूल्यों की अधिक चिन्ता नहीं रहती । व्यक्ति बाहर जाकर थोड़ा उन्मुक्त हो जाता है ।

गाँवो में समय और स्थान दोनों की इफ़रात है और शहरों में दोनों की तंगी से व्यक्ति पीड़ित है । अत: पहले का "अतिथि देवो भव" अब "अतिथि सुसरो भव" हो जाय तो उसमें क्या आश्चर्य ?

शहर का व्यक्ति सिमटकर स्वार्थी हो गया है । भाई के बच्चे अब अपने बच्चे नहीं माने जाते । यही कारण है कि "नदी फिर वह चली" का जगलाल उसकी पत्नी परबतिया जब उसे उसके सगे भाई सूखलाल की विपन्न अवस्था के कारण आर्थिक सहायता के लिए समझाती है तब दोनों के परिवार का हिसाब-किताब लेकर बैठ जाता है ।

स्वार्थ भावना का स्थानापन्न हो गया है, फलत: सम्बन्धों में भी बदलाव को दृष्टिगत किया जा सकता है । पहले जहाँ बेटी-दामाद का

पानी भी हराम समझा जाता था, उसके स्थान पर आज कई बार सास-ससुर को दामाद पर निर्भर रहना पड़ता है, यथा -- कमलेश्वर के -- "समुद्र में खोया हुआ आदमी" में। "छाया मत छूना मन" की नायिका वसुधा की माँ को उसके "स्टेप-फाधर" अपने "बोस" के साथ सोने के लिए प्रेरित करते हैं, क्योंकि बोस से उनके आर्थिक हितों की रक्षा होती थी। अतः आगे चलकर वह भी अपनी लड़कियों को यही ट्रेनिंग देती है। वह अपनी बेटी कंचन को "केबरे नृत्य" के लिए उत्साहित करती है क्योंकि "आजकल [उसमें] बहुत पैसे मिलते हैं।"[52] बेटी की कमाई अब बाप को लेनी पड़ती है। "पचपन खंभे लाल दीवारें" तथा "टेराकोटा" इन दोनों उपन्यासों में इन परिवर्तित मूल्यों से उत्पन्न व्यंग्य को उकेरा गया है।

पुराने मूल्यों के हिसाब से — मित्र - पुत्री पुत्रीवत् ही मानी जायेगी, किन्तु श्री लाल शुक्ल कृत "सीमाएं टूटती है" का सैंतालीस वर्षीय अविवाहित विमल सलूजा अपने ही मित्र दुर्गादास की तेबीस वर्षीय पुत्री चाँद को प्रेम करने लगता है।

"रेखा" उपन्यास की मिसेज चावला अपनी पुत्री के "फिआन्सी" से ही प्रेम करने लगती है। इसी उपन्यास का शशिकान्त अपने गुरू की पत्नी "रेखा" पर हाथ साफ कर के गुरू-दक्षिणा (?) चुकाता है।

गुरू-शिष्या के शारीरिक एवं वैवाहिक सम्बन्ध पहले जहाँ त्याज्य व घृणित समझे जाते थे, अब शनैः शनैः सहज हो रहे है। "रेखा" के प्रोफेसर प्रभाशंकर अपनी एम॰ए॰ [फाइनल] की छात्रा से पहले प्रणय और

बाद में परिणय सूत्र में बँधकर "रेखा भारद्वाज" से "रेखा शंकर" बना देते हैं। "एक टूटा हुआ आदमी" का धर्मनाथ दो किशोरियों को पढ़ाने जाता है। दोनों बहिने हैं और वह दोनों को प्रेम करने लगता है। एक स्थान पर दोनों की तुलना करते हुए वह कहता है, "एक गंगा की तरह शांत है तो दूसरी जेलम की तरह अल्हड़।"[53]

पहले "बहन" शब्द का एक भावनात्मक मूल्य था। किसी पुरानी कहानी में पढ़ा हुआ स्मृति-पटल पर कौंध रहा है जिसमें एक डाकू किसी द्वारा "भाई" कह जाने पर उसे लूट लेने के स्थान पर उपर से कुछ भेंट देने लगता है। अब शहरों में "बहन बनाना" प्रेम करने का "प्रिलिमीनरी स्टेज" माना जाता है। "बहन" शब्द का इतना तो अवमूल्यन हुआ है कि "दिल एक सादा कागज़" में रज़ा द्वारा निरूपित फिल्म इण्डस्ट्री में "बहन" शब्द रखैल का पर्यायवाची बन गया है, यथा -- "छोटी हीरोइन बड़ी खूबसूरत थी। न होती तो मझले प्रोडयूसर ने उसे अपनी बहन ही क्यों बनाया होता - बहन यानी रखैल।"[54]

:2: यांत्रिक जीवन की त्रासदता :

शहर का मनुष्य मशीन के साथ मशीन हो गया है। चार्लीचेप्लीन की एक फिल्म "मोड़र्न टाइम्स" में इसे बखूबी उभारा गया है। आज का मनुष्य भावना और इच्छा के सहारे नहीं "घड़ी" के ठोकों पर चलता है। व्यस्तता मनुष्य को सुखी एवं संपन्न बना सकती है, किन्तु यहाँ व्यस्तता के साथ "टेन्शन" जुड़ा हुआ है। और यह व्यस्तता किसी महत् कार्य के लिए नहीं, ज़िन्दगी की छोटी-छोटी जरूरतें पूरी करने के लिए है।

फलत: व्यक्ति व्यर्थता के बोध से आक्रान्त व पीड़ित है । किसी आधुनिक कवि ने कहा है --

"छोटी छोटी बातों में ज़िन्दगी गुजर गयी,

दो कदम चले नहीं कि कचरी उतर गयी ।"

बम्बई जैसे महानगरों में आदमी चलता नहीं, दौड़ता है । रमेश बक्षी के उपन्यास "अठारह सूरज के पौधे ﴾27 डाउन﴿ का नायक एक रेल्वे कर्मचारी है, अत: उसने अपनी जिन्दगी की धड़कनों का तालमेल "अप-डाउन" ट्रेनों से मिला दिया है । उसका खाना-पीना-सोना-शौच इत्यादि जाना आदि सभी कार्य ट्रेन में होते हैं, अत: कभी यदि किसी के घर खाना-पीना या शौच करना पड़ता है तो वह बड़ा "अनइज़ी" महसूस करता है ।

मशीन का काम "कल्कयुलेशन्स" पर चलता है और आज का मशीनवत् मनुष्य भी "केल्क्युलेशन्स" पर चल रहा है । यहाँ लोग "कोशो" की दूरी पर नहीं, पैसों की दूरी पर रहते हैं, यथा -- "क्योंकि वह जानता था कि प्रोडयूसर का घर स्टेशन से एक रूपया बीस पैसे दूर है ।"[55]

तात्पर्य यह कि हर बात में "केल्क्युलेशन्स" चलता है -- प्रेम और विवाह में भी, यथा -- "सबहिं नचावत राम गोसाईं के सेठ राधेश्याम ।"

:3: उच्च समाज की रंगीनियाँ :

गोस्वामी तुलसीदास ने बहुत पहले ही लिख दिया था कि "समरथ को दोष नाहिं गुसाईं" । समाज में यह प्राय: देखा गया है कि तथाकथित उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग के लोगों की किसी के प्रति किसी भी प्रकार की

प्रतिबद्धता नहीं होती । यह सारा द्वंद्व मध्यवर्ग को ही वहन करना पड़ता है । उच्चवर्ग पहले भी उन्मुक्त था[56] आज भी है; परन्तु इस उच्चवर्ग में पहले जहाँ सामन्त वर्ग, राजे-महाराजे ही आते थे, अब उसमें उच्च व्यावसायिक वर्ग, राजा-महाराजा, उच्च राजनीतिक वर्ग (आधुनिक राजा-महाराजा) तथा उच्च वर्ग के सरकारी अधिकारी आदि का समावेश होता है ।

भोपाल गेस - दुर्घटना के समय वहाँ हिल-स्टेशन पर स्थित गेस्ट-हाउस की रंगीनियाँ प्रकाश में आयी थीं । देश का शायद ही कोई बड़ा राजनीतिज्ञ बड़ा अधिकारी उनके रंगीन आतिथ्य से वंचित रहा होगा । "डाक बंगला" (कमलेश्वर) के मि० बतरा का व्यवसाय ही अधिकारियों से मिलकर लोगों का तथा अपना काम बनाना है । किसी को परमीट दिलाना, किसी को "वीसा" दिलाना, किसी का पासपोर्ट बनवाना, किसी को "इम्पोर्ट" सुविधाएं दिलाना, किसी को डिसपोज़ल का सामान सस्ते में दिला देना -- यही उसका काम है और इसके लिए प्रत्येक की नब्ज़ को वह भली-भाँति जानता है । पचास हज़ार से नीचे का काम करने में वह अपनी तौहीन समझता है । किसी भी महीने उसकी आमदनी आठ-दस हज़ार से कम नहीं रहती थी ।[57] "काँचघर" (रामकुमार भ्रमर) में "तमाशा" की परमिशन के लिए जिलाधीश के पास "तमाशा" की एक रूपसुन्दरी को रातभर के लिए भेजा जाता है । "एक चूहे की मौत" में उच्च अधिकारियों में चलनेवाले "की-कलब" का वर्णन आता है जिसमें आधुनिक पाश्चात्य समाज में प्रचलित एवं शनैः शनैः प्रतिष्ठित                                की बात आती है ।[58] "छाया मत छूना मन" की वसुधा को चार-पाँच हज़ार रुपये का कर्ज पाने के लिए

आफिस के एक अधिकारी मि॰ चावला के साथ सिमला में चार रात रहना पड़ता है । इसी उपन्यास में उच्च वर्ग में व्याप्त "ब्लू फिल्म" के चस्के का वर्णन भी आया है जिसमें संभोगरत तरुणों की विविध लीलाओं को दिखाया गया था । इस प्रकार डीनर पार्टियाँ, कोक-टेल पार्टियाँ, नाईट-कलब, कैबरे, ब्लू फिल्म, कार्ल-गर्ल, नाइट मेर, आदि में उनकी रंगीन दुनिया आबाद है ।

"कुरु कुरु स्वाहा" (मनोहर श्याम जोशी) और "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई" प्रभृति उपन्यासों में मोहमयी बम्बई नगरी के उच्च-वर्ग कर रंगीनियों को भली-भाँति उकेरा गया है । सेठानी नर्मदाबेन की वासना-पूर्ति सेठ नगीनदास नहीं कर सकते पर इसका बड़ा "सोफिस्टीकेटेड" तरीका सेठानीजी ने ढूंढ निकाला है । धर्मशाला, अनाथालय, मन्दिर, स्कूल, आदि में व्यवस्थापक, पूजारी व प्रिंसिपल की नियुक्ति सेठानीजी करती हैं । इन माध्यमों से वह अपना यथेच्छ शिकार ढूंढ लेती है ।

:4: भौतिक समृद्धि की अंधी दौड :

भौतिक समृद्धि का मोह हर युग में रहा है, परन्तु पहले जहाँ इनमें गिने-चुने लोग लगे हुए थे, वहाँ आज गिने-चुने लोग ही इससे बचे हुए है । भौतिक - समृद्धि की इस अंधी दौड में आज हर वर्ग, हर क्षेत्र का आदमी संलग्न है । सभी रातोंरात समृद्धि के शिखर पर पहुँच जाना चाहते हैं और इस हेतु प्रामाणिकता, राष्ट्रीयता प्रभृति जीवन मूल्यों को विस्मृत किया जा रहा है । इस दौड़ में गिरे हुए को उठाने की बात नहीं है, उसे रौंद कर आगे बढ़ना है । तभी तो आगे निकल सकते हैं ।

"आगामी अतीत" का कमल बोस इसीका शिकार होता है । स्पर्द्धा के क्षेत्र में पड़कर वह अपनी ज़मीन से अपने परिवेश और वर्ग से कट जाता है । भौतिकता की इस स्पर्द्धा में व्यक्ति सफल तो होता है पर अपनी आत्मा को बेचकर । "सबहि नचावत राम गोसाईं" के राधेश्याम और जबरसिंह भी इसी रोग के शिकार है । अपने व्यावसायिक प्रतिष्ठानों को बढ़ाने में राधेश्याम नैतिक मूल्यों की कतई परवाह नही करता । जबरसिंह पंडित सदाशिव गौतम का पल्ला पकड़कर राजनीति में आते हैं । उन्हीं की सहायता से डिप्टी मिनिस्टर बनते हैं और फिर सन् 1957 के आमचुनाव में कुछ ऐसा षड्यंत्र रचते हैं कि पंडित सदाशिव गौतम हार जाते हैं । इस पर गौतमजी कहते भी हैं -- "मेरी वजह से इसे मिनिस्टरी मिली, मैंने संगठन का पूरा भार इसे सौंप दिया और इसने मेरे साथ विश्वासघात किया - मुझे हरवा दिया ।" अपनी इसी पराजय के बाद पंडित सदाशिव गौतम जो बीमार पड़े तो फिर चारपाई से नहीं उठ सके । "प्रश्न और मरीचिका" की रमा आण्टी भी भ्रष्ट तरीकों से सत्ता व समृद्धि को हथियाती है । इसी उपन्यास में एक स्थान पर अमरीकी संपन्नता का बड़ा बीभत्स चित्र मिलता है । सोफी के कथनानुसार वहाँ लोगों के पास मकान, कार, फर्नीचर आदि सब होता है, किन्तु कर्ज पर लिया हुआ; जिनकी किश्तों को चुकाने के लिए स्त्री-पुरुष दोनों को नौकरी करनी पड़ती है और इस दौड़ में विवशतावश उन्हें दूसरों के साथ सोना भी पड़ता है ।[59] "मुक्तिबोध" (जैनेन्द्रकुमार) की अल्ट्रा मोडर्न एवं अनिंद्य सुन्दरी नीलिमा के आकर्षक व्यक्तित्व को उसका पति अपनी व्यावसायिक सफलता के लिए भुनाता है ।

तात्पर्य यह कि भौतिकता की इस दौड़ में आगे निकल जाने के लिए आजका व्यक्ति हर मूल्य चुकाने के लिए तैयार बैठा है ।

:5: व्यापक - भ्रष्टाचार :

ऊपर उल्लिखित स्थितियों के कारण समाज के प्रत्येक क्षेत्र में भ्रष्टाचार फैल रहा है । कोई भी क्षेत्र अब उससे अछूता नहीं रहा है । शिक्षा और धर्म जैसे क्षेत्रों में भी यह सर्वग्राही भ्रष्टाचार इतना फैल रहा है कि समूचा सामाजिक परिवेश अध:पतन की ओर अग्रसर हो रहा है । अन्य क्षेत्रों में भ्रष्टाचार हो तो शिक्षा और धर्म द्वारा उनमें कुछ सुधार की संभावना रहती है, किन्तु जब धर्म और शिक्षा ही भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूब जाते हैं तब सुधार की कोई उम्मीद शेष नही रह जाती । शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार का कच्चा चिट्ठा "राग दरबारी" में मिलता है । "राग दरबारी" के प्रिंसिपल महोदय वैद्यजी के दरबार में सुबह-शाम हाजिरी बजाते हैं और उसी के बल पर अन्य मास्टरों पर रौब झाड़ते रहते हैं । चालू क्लास से भाग जाने वाले मास्टर मोतीराम को तो वे कुछ नहीं कहते क्योंकि मास्टर मोतीराम वैद्यजी के आदमी थे, उल्टे मास्टर मालवीय को डाँट खानी पड़ती है । इन्हीं कारणों से खन्ना और मास्टर मालवीय जैसे अध्यापक भी रातदिन गंदी राजनीति में डूबे रहते हैं । "अलग अलग वैतरणी" के मास्टर जवाहरसिंह अपने ही शिष्य के साथ हमबिस्तर होकर उससे पत्नी का काम चला लेते हैं । "दिल एक सादा कागज" में तो स्कूल - कॉलिज की राजनीति के मूल में ही लौंडाबाजी है ।

"सबहि नचावत राम गोसाईं" "इमरतिया" "उग्रतारा" "सूखता हुआ तालाब" "जुलूस" प्रभृति उपन्यासों में धर्म के नाम पर चलनेवाले भ्रष्टाचार की कलई को खोलने का प्रयत्न हुआ है । सबहिं नचावत राम गोसाईं" में धर्म के नाम पर मेवालाल सरकारी जमीन पर कब्जा कर "राधेश्याम ठाकुरद्वारा" बनवा लेते हैं और सौ रुपये महीने की आमदनी का जरिया मंदिर के द्वारा बैठे ठाले निकाल लेते हैं । उनके पिता घासीराम ने मंदिर के लिए कुल चार-पाँच सौ रुपये जुटाये थे, उसीमें से यह विशाल ठाकुरद्वारा कैसे बना उसका रहस्य बताते हुए मेवाराम अपने पिता घासीराम से कहते हैं -- "बप्पा ! यह सब अपनी तीरथयात्रा का पुण्य समझो । जमीन पर भक्त लोगों ने जबरदस्ती कब्जा कर लिया और तुमने जो रुपया छोड़ा था वह चन्दे से बढ़ते-बढ़ते दस हजार हो गया, और यह मंदिर बन गया । राम भजन पाण्डे को हमने पुजारी बनाय दीना है और मंदिर का ट्रस्ट बन गया है । ट्रस्टी हैं हम, तुम्हारी बहू, तुम्हारा पोता और बाहर से रामभजन पाण्डे और गोपालजी कथावाचक । x अब आप आ गये हो तो गोपालजी कथावाचक को ट्रस्ट से निकाल बाहर करेंगे ।"[60]

"इमरतिया" में निरूपित "बाबा जमनिया" का मठ तो दुराचार का अड्डा है । बाबा और गाँव के रईस एवं जमींदार सभी की मिली-भगत से यह अनाचार पनपता है । नि:संतान औरतों को छड़ी छुआकर कैसे संतान प्राप्ति करवायी जाती है और उस गोरखधंधे में बाबा के साथ कौन कौन है उसका रहस्य मस्तराम के द्वारा धीरे धीरे खुलता है ।

मठ में गौरी जैसी सधुआइनें हैं जिनका उपयोग अधिकारियों को खुश रखने के लिए किया जाता है । गौरी साल में दो-तीन मर्द बदलती है, क्योंकि उसके ही शब्दों में वह गरमाए घोड़े को भी शांत करने की कूवत रखती है ।[61] लक्ष्मी को महंत से ही गर्भ रहता है । बाद में उसके बच्चे की बलि दी जाती है । एक स्थान पर बाबा अंधविश्वासी हिन्दू जाति के सम्बन्ध में कहते हैं : "हिन्दू जाति सचमुच गाय होती है । बार बार दुहते जाओ, बूँद बूँद निचोड़ लो । फिर भी लात नहीं मारेगी, सींग नही चलाएगी । अपनी भोली-भाली जनता को दुहने के लिए भगौती ने हम से बछड़े का काम लिया ।"[62]

जब शिक्षा और धर्म की यह स्थिति है, तो अन्य क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार का अन्दाज़ा तो सहज ही लगाया जा सकता है । "भौतिक समृद्धि की अंधी दौड़" तथा "उच्च समाज की रंगीनियाँ" प्रभृति शीर्षकों के अंतर्गत इसका पर्याप्त विवेचन हो चुका है ।

:6: निम्न समाज का नरक :

महानगरों में मीलों फैली झोंपड़ पट्टियों का जीवन नरक-तुल्य है । "नदी फिर बह चली", "एक टूटा हुआ आदमी", "मुरदाघर", "प्रेत", "अठारह सूरज के पौधे" प्रभृति उपन्यासों में एक-एक दो-दो रुपये में शरीर का सौदा करनेवाली वैश्याओं के जीवन की नाटकीयता को चित्रित किया गया है । "नदी फिर बह चली" में पटना की गन्दी खोलियों में चलनेवाली सस्ती वेश्यागिरी का जीवंत चित्रण मिलता है । यहाँ "कमलवा" हो या "सरदारा" हो हर "माल" दो रुपये चार आने

मिलता है ।[63] पुआल पर टाट और तकिये के बदले में हर बिछावन पर एक-एक ईंट । रात होती है तो माटी के बने ताखे पर माटी का दीया जल जाता है । सुबह से रात के दस बजे तक यह काम चलता रहता है ।[64] इतना ही नहीं यहाँ गृहस्थिन औरतें भी फीस पर चलती हैं । दस बजे रात को दलाल ले जाता है और भोर होने पर पहुँचा आता है ।[65]

"मुरदाघर" में तो इस सस्ती वेश्यागिरि का लोमहर्षक वर्णन मिलता है । इस उपन्यास का पोपट पत्नी की वेश्यगिरी की कमाई को जुए में उड़ा देता है और अपने "टेम" की राह देखता है । उसको विश्वास है कि एक दिन उसका "टेम" जरूर "आएंगा" और तब वह भी हाजी उमर की तरह बड़ा सेठ बन जायेगा । वह मैना से कहता है : "हाजी उमर कू जानती ना तू ? नई जानती ? मेरा हाथ हवालात में था एक टैम । पहला दारू का धंधा किया । जभी पइसा कमाया थोडा ........तो रंडी का होटल चालू किया । थोड़ा और पइसा कमाया । पीछू दानचोरी का काम चालू किया ...... इस्मलिंग । पाँच सालका अन्दर बन गया लाखोपती । बड़ा - बड़ा बिल्डिंग है उसका । पोलिस का सब बड़ा साब लोक - कू पार्टी देता .... बड़ा बड़ा मिनिस्टर लोक उसकू अपना घरकू बुलाता । समझी क्या ?"[66]

डॉ. पारूकान्त देसाई के शब्दों में "नियोन लाइट से जगमग सफेद इमारतों वाली सफेद पोश बस्ती के कोन्ट्रास्ट में बम्बई की एक गन्दी, घिनौनी, सड़ांध से भरी हुई झोंपडपट्टी की सच्ची यथार्थ तस्वीर को

लेखक ने इस खूबी से उभारा है कि हमारे सभ्य समाज की परत....दर.. .... परत खुलती गई है और वह अपने नग्न स्वरूप के साथ चेतना की संवेदनशीलता के कठघरे में आकर उपस्थित हो जाता है । महानगरों की इमारतों के समान्तर फूटपाथों पर भी लाखों करोडों मनुष्य बसते हैं, जो कुत्तों, कौवों और रेंगते हुए कीडों से भी बदतर जिन्दगी बसर करते हैं और जिन्हें समाज की जूठन और गन्दगी के अतिरिक्त कुछ समझा नहीं जाता । उन लोगों की इच्छा - आकांक्षाओं, सपनों, आशाओं-निराशाओं, अच्छाइयों-बुराइयों को उनकी अभागी - अपाहिज ज़िन्दगी की अभिशप्त नियति को, उनकी सडांध से घिरी, धूल और कीच में बरबस औंधी पड़ी, फूटपाथ पर एकदम सपाट गिरी-लेटी मज़बूर जिन्दगियों के आँसू - रीते दर्द को त्यों का त्यों उनके अपने परिवेश एवं शैली में चित्रित कर लेखक ने अपने दुस्साहस का परिचय दिया है ।"67

झोंपडपट्टी के इस कोढ़युक्त जीवन में सभ्य समाज के सारे नैतिक मूल्य धराशायी हो गए हैं । वस्तुत: यह उनके सपनों का ही मुरदाघर है ।

:9: शहरों में पुलिस का अभिगम :

ग्राम हो या नगर, पुलिस का अभिगम निरीह, निर्दोष, शोषित लोगों को दबाकर सत्ताधारी धनवान लोगों के हाथों को मजबूत करना ही रहा है । उनका कोप गरीबों पर ही अधिक फूटता है । "मुरदाघर" में हम देखते हैं कि पुलिस सस्ती छोटी वेश्याओं को ही अधिक सताती है । दारू के अड्डेवाले, वरली मटकावाले और स्मगलर तो पुलिस के

दोस्त होते हैं क्योंकि उनके हफ्तों पर पुलिस का कारोबार चलता है । स्मगलर के यहाँ चोरी करनेवाले को पुलिस के अमानुषी अत्याचारों से गुज़रना पड़ता है । नत्थू के शब्दों में -- "किधर भी चोरी करना पन इस्मगलर •• •• दारूवाला•······रण्डीवाला ••••••• इधर कभी भूल के भी नहीं जाने का । नई तो पोलिस जान से मार डालेगा - मार के । कभी नहीं छोड़ेगा ······ सारा पोलिस खाता इधर से ज चलता ।"[68]

स्थापित व्यवस्था से हाथ मिलाकर गरीब लड़की को वेश्या बनाने वाली इस प्रक्रिया में पुलिस का भी योगदान है । "रीमान्ड होम" से निरीह निर्दोष लड़कियों को उनके "भाई" (?) अधिकारियों की मुट्ठी गर्म करके वहाँ से निकालकर उन्हें वेश्यालयों में डाल देते हैं । "मुरदाघर" की चमेली ठीक ही कहती है कि "आक्खा मुम्बई का लोक मेरा भाई है । जो साब कू देंगा रुपिया ····· वो च मेरा भाई हो जाएँगा ।"[69] उसके ही शब्दों में, "इधर इंगले नाम का साब होता"। साला रात कू किया मेरे कू ········ फिर ये मोटे डंडे से मारा । बोला कि कोई कू बोलेंगी तो तेरा जान ले डालूँगा । क्या समझी ? पुच् । मोत छोटी थी वो टैम मैं । मेरे कू क्या मालम । करवा भी ली और मार भी खा ली चुपचाप। मोत डर लगा मेरे कू । तीन दिन लोकप में रखो मेरे कू ······ पीछू होम में डाल दिये ······पुच् । महीना-भर उधर रही। पीछू एक भाई आया मेरा । साब उससे पाँच सौ रुपिया लिया और मेरे कू भेज दिया साथ में । ·········· वो टैम ताड़देव में एक मुस्लिम घरवाली

होती । ये मेरा भाई उधरिय रखा मेरे कू । उधरिय धंधा करती मैं ... पुचू ! तीन टैम गयी होभ्रमें और तीन भाई आया मेरा । कोई पाँच सो दिया सबि कू..... कोई चार सौ । अभी ये टैम क्या करेगा मालम नई ।"[70]

"सबहिं नचावत राम गोसाई" का जैकृष्ण ठीक ही कहता है कि "पुलिसवालों की दोस्ती ही बदमाशों से होती है, कोई शरीफ और नेक आदमी भला क्यों पुलिसवालों से दोस्ती करेगा ? वह तो इन के नाम से दूर भागता है । तो अगर पुलिस की अफसरी करनी है तो एक-से-एक छँटे बदमाश से मेल-जोल बढ़ाना पड़ेगा ।"[71]

जिस प्रकार गाँवो की फौजदारियाँ पुलिस के सहयोग से चलती है, उसी प्रकार शहर के सारे गोरखधंधे भी पुलिस की जानकारी में पुलिस की सहायता से चलते हैं । "नदी फिर बह चली" का जगलाल ठीक ही कहता है : "दलाल जो कमाता है उसमें उन्हें {पुलिस को} भी हिस्सा देता है । आदमी पैसे खर्च करे तो पुलिस की नाक पर खून हो सकता है, पुलिस की नाक पर रण्डीखाना चल सकता है । .... इस पटने में कई ऐसे होटल है, जहाँ लड़कियाँ मिलती है । दस बजे रात को वे होटलों में चली जाती हैं और सुबह चली आती हैं । क्या पुलिसवाले यह सब नहीं जानते ? उसमें भी बड़े बड़े घर की बेटियाँ, एफ०ए०, बी०ए० पास ।"[72]

:8: मध्य वर्ग की प्रदर्शन-प्रियता :

निम्न-वर्ग और उच्च-वर्ग दोनों उन्मुक्त है । दोनों नंगे हैं, परन्तु एक का नंगापन फूहड़ है, दूसरे का सोफिस्टिकेटेड । सामाजिक मर्यादाओं और नैतिक मूल्यों का उत्तरदायित्व उन पर नहीं हैं । जब कि मध्य वर्ग वर्जनाओं की श्रृंखलाओं में कैद हैं । अत: वह कुंठित है । प्रदर्शन-प्रियता इसी कुण्ठा का परिणाम है । "रूकोगी नहीं राधिका " में राधिका की भाभी राधिका को अपने साथ इसलिए ले जाती है कि "फॉरिन रिटर्न" ननद से उसके अहं को तुष्टि मिलती है । "दिल एक सादा कागज" में रज़ा ने भी इस वृत्ति का मखौल उड़ाया है । अपने आपको प्रगतिशीलों में खपाने के लिए लोगों का "बीफ" खाना इसी वृत्ति का परिचायक है । इस प्रदर्शन-वृत्ति का बड़ा मनोरंजक एवं व्यंगात्मक चित्र लेखक ने खींचा है --

"स्वतंत्रता के बाद जो नौकरी पेशा वर्ग उभरा है, वह अपने आपको पढ़ा लिखा समझने लगा है । ड्राइंग - रूमों में किताबें सजाता है और साहित्यकारों को पैट्रोनाइज़ करता है । शाम को महफिलें सजाता है । बीवियाँ और बेटियाँ व्हिसकी के गिलास लेकर साथ बैठती हैं और सार्त्र के "फैटलिस्ट एटिटयुड" और आस्कर वाइल्ड की "साडोमी" पर बहस करती हैं । आधुनिक अमेरिकन लिटरेचर की बात करती हैं । इर्विंग वालेस, ल्यान अरिस, मारियो पूजो.... और ग़ालिब पर सर धुनती है और कन्ट्रैक्ट ब्रिज या पोकर खेलती है । जो मिस या मिसेज नहीं आयी हैं उसके वार्डरोब और ड्रेसिंग टेबिल का

मज़ाक उड़ाती हैं और स्कैन्डल्ज़ के थान के थान बुनती है ।"[73]

श्रीलाल शुक्ल कृत "सीमाएँ टूटती हैं" में भी इस मध्यवर्गीय प्रदर्शन - प्रियता पर व्यंग्य किया गया है । उपन्यास का एक पात्र प्रोफेसर और चाँद का वार्तालाप देखिये :

"अचानक प्रोफेसर ने कहा, "आप कुछ कह क्यों नहीं रही हैं ? " " "क्या कहूँ ?" "कुछ भी । नयी फिल्में, मिस इण्डिया कांटेस्ट, उषा अय्यर का गाना या जगजीतसिंह की ग़ज़लें ...... ।"

"आपने मुझे लड़कियों के उस गिरोह में लिख रखा है ?"

"वह गिरोह बिल्कुल ठीक है, फिर भी आप चाहें तो बंगला देश, इज़रायल, युनिवर्सिटी रिफार्म्स, ऐग्रिकल्चरल प्राइस कमीशन, मोनापलीज़ ऐंड रिस्ट्रिक्टि ट्रेड्स एक्ट - किसी के भी बारे में ...... ।"[74]

इस संवाद में हमारे मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी वर्ग पर यह व्यंग्य है कि हम इस प्रकार की चर्चाओं के द्वारा अपने ज्ञान का प्रदर्शन करते हैं और उसीको बुद्धिजीवी का लक्षण समझते हैं ।

## :9: साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक मूल्यों में पतन की स्थिति

साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक क्षेत्र तो हमारे समाज जीवन के फेफड़े हैं । अन्य क्षेत्रों की विकृतियाँ यहाँ आकर शुद्ध होती हैं । परन्तु हमारे साम्प्रतिक जीवन की विडम्बना यह है कि अब इन क्षेत्रों के मूल्यों का पतन भी क्षिप्रगति से हो रहा है । "राग दरबारी", "कथा-सूर्य की नयी यात्रा", "जहर चांद का" प्रभृति उपन्यासों में शैक्षिक मूल्यों की

गिरावट को भलीभाँति बताया गया है । रंगनाथ विश्वविद्यालय में में चलनेवाले शोधकार्य की तुलना घास खोदने की क्रिया से करता है । यही रंगनाथ वर्तमान शिक्षा पद्धति पर व्यंग्य कसते हुए कहता है कि "वर्तमान शिक्षा पद्धति रास्ते में पड़ी हुई कुतिया है, जिसे कोई भी लात मार सकता है ।"[75]

"कथा-सूर्य की नयी यात्रा" में हिन्दी साहित्य, तत्सम्बन्धी गुटबन्दियाँ, विश्व विद्यालयों के हिन्दी विभाग, हिन्दी के कई अन्य संस्थान, विश्वविद्यालय के "महन्ती दरबार" उनके गुर्गे, प्रकाशकों और महन्तों की आपसी साँठ-गाँठ इत्यादि का बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्रण किया गया है । इसी सिलसिले में हिन्दी के दो तथाकथित प्रकाण्ड विद्वानों द्वारा प्राणीत दो ग्रंथो का उल्लेख आता है । व्यंग्य की सृष्टि के लिए लेखक उन ग्रंथों के नाम इस प्रकार देता है - "हिन्दी साहित्य और नवनीतवाद" और नवनीतवाद : प्रक्रिया और प्रलेपन ।"[76] आधुनिक हिन्दी साहित्य की एक पत्रिका के लिए "द्विविधा"[77] शब्द का प्रयोग भी इसी व्यंगात्मक मुद्रा को उभारता है । तथाकथित आलोचकों पर व्यंग्य करने के लिए कहा गया है -- "मेरा एक दोस्त साहित्य का इन्सपेक्टर है ।"[78]

हमारे यहाँ शिक्षा-संस्थाएँ कैसे खड़ी हो जाती है और उनकी शैक्षिक सन्नद्धता कितनी होती है उसका एक व्यंगात्मक उदाहरण "राग दरबारी" के इस वाक्य में मिलता है -- "जुता हुआ ऊसर कृषि-विज्ञान की पढ़ाई के काम आता था ।"[79]

"सबहि नचावत राम गोसाईं" में हिन्दी के तथाकथित साहित्यकार, नये कवि, उनकी गुटबन्दियां, लड़ाई-झगड़े, गाली-गलौज और फिर इन सबके ऊपर उनकी राजनीतिक मुखापेक्षिता, चापलूसी आदि का बड़ा ही व्यंगात्मक चित्र उपस्थित किया गया है । एक उदाहरण दृष्टव्य है :-
"श्री शंकरदेव प्रशांत की गणना हिन्दी के युग-प्रवर्तक कवियों में होती थी । उन्होंने अपना साहित्यिक जीवन छायावाद के कवि के रूप में आरंभ किया था, फिर वह समाजवादी बनकर प्रगतिशीलता पर उतर आये थे । सन् 1939 के महायुद्ध के समय उन्होंने वीर रस अपना कर भारत के नौजवानों को सेना में भरती होने के लिए प्रोत्साहित किया था और सन् 1947 में देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उन्होंने स्वतंत्र भारत की गौरव-गाथा गाते हुए अनेक राष्ट्रीय कविताएँ लिखीं । यही नहीं, शांति, सह - अस्तित्व और अहिंसा का नारा अपना कर उन्हों ने कई काव्य रच डाले । शंकरदेव प्रशांत के पास एक मोहक और आकर्षक व्यक्तित्व था, उनकी वाणी में माधुर्य के साथ ओज था । देश के अनेक शीर्षस्थ नेताओं एवं महत्त्वपूर्ण मंत्रियों से उनकी प्रगाढ़ मित्रता थी, और इधर पाँच-छ: वर्षों से वह दिल्ली में बस गये थे । सरकारी अफसरों पर उनका प्रभाव था और न जाने कितनी सरकारी कमेटियों के वह सदस्य थे ।"[80]

इन्हीं शंकरदेव प्रशांत को साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिलता है । शंकरदेव की राजनीतिक पहुँच के कारण बहुत से नवोदित कवि उनके आसपास मँडराते रहते हैं । दामोदरदास उनमें से एक हैं । दामोदरदास के पिता रिखभदास के पास सीमेण्ट की एजेन्सी थी, और सीमेण्ट पर पाँच रुपया की

बोरी ब्लेक करके जो बेतहाशा रूपया रिखभदास को मिल रहा था, उसमें से पांच सौ रूपयों के चन्दे के बल पर उसने शंकरदेव प्रशांत द्वारा संकलित एवं प्रकाशित" नयी कविता के नवरत्न" नामक ग्रंथ में अपना नाम उन "नव रत्नो" में शामिल करी लिया था । यही नहीं उसने अपना एक कविता संग्रह भी प्रशांतजी की लम्बी भूमिका के साथ प्रकाशित करा दिया था ।

उनके सन्मान में सेठ राधेश्याम द्वारा जो समारंभ आयोजित होता है उसमें बाद में "स्कॉच व्हिस्की" के दौर चलते हैं तब प्रशांतजी के संकोच करने पर दामोदरदास अपने गुरू को प्रोत्साहित करते हुए कहता है -- "गुरूजी, यहाँ सब अपने ही आदमी हैं, संकोच करने की कोई जरूरत नहीं है । असली स्कॉच व्हिसकी है । सेठ राधेश्याम के यहाँ घटिया चीज नहीं मिलेगी ।"8।

इसी समारोह में सेठ राधेश्याम साहित्यकारों के आर्थिक स्तर को ऊपर उठाने के लिए "मेवा - सेवा संस्थान" की ओर से प्रत्येक वर्ष हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार को पचीस हजार के पुरस्कार की घोषणा करते हैं और तत्काल ही "मेवा-सेवा पुरस्कार" कमेटी का गठन होता है जिसके चेयरमैन गृहमंत्री ठाकुर जबरसिंह (सेठ राधेश्याम के घनिष्ठ मित्र) मंत्री कुंदनलाल (सेठ राधेश्याम के साले साब) कार्यकारिणी के सदस्यों में लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस और आगरा विश्वविद्यालयों के चार वाइस चांसलर और अध्यक्षा श्रीमती गंगादेवी (सेठ राधेश्याम की धर्मपत्नी) होते हैं ।

इस पर झंझावातजी नामक एक नवयुवक कवि आपत्ति उठाता है कि इस कमेटी में कोई भी साहित्यकार नहीं है तो साहित्य का मूल्यांकन कैसे होगा । तब गृहमंत्री जबरसिंह उसे डाँटते हुए कहते हैं -- "इस तरह की अनर्गल बात करनेवाले को यह पता होना चाहिए कि साहित्यकारों में हरामखोरों की तादाद बहुत बढ़ गयी है, दल-बन्दियों में बँधे हुए एक-दूसरे से लड़ते - झगड़ते हैं, आपस में ही गाली-गलौज करते हैं । तो साहित्य का सही मूल्यांकन हम कर सकते हैं -- यह साहित्यकार क्या करेंगे ? यह "खाओ और गुर्राओ" की नीति मुझे बिलकुल पसन्द नहीं ।"[82]

इस पर एक सम्भ्रान्त से कवि मनोजजी उठकर बाजी को सँभाल लेते हैं -- "मैं अपने साथी कवि झंझावातजी के भावावेग पर लज्जित हूँ -- इसे बदतमीजी न समझा जाये । सेठ राधेश्यामजी की योजना बड़ी सराहनीय है । मैं कवि समुदाय की ओर से गृहमंत्रीजी से क्षमा माँग लेता हूँ ।"[83] इस नवनीत - प्रलेपन के बाद प्रशांतजी " आत्मा की आवाज " नामक कविता का पाठ करते हैं ।

सेठ राधेश्याम एवं मंत्री महोदय के चले जाने के बाद प्रशान्तजी ने जो कविता सुनायी उसमें पूंजीवाद, शोषण और उत्पीड़न को बेतहाशा गालियाँ दी गयी थी और नवीन युग के युवकों को ललकारा गया था कि वह युग-चेतना के अग्रदूत बनकर इस अन्धकार को मिटावें और मानवता के सूर्योदय में सहायक हों ।[84] यह अवसरवादिता और प्रवंचना नहीं तो और क्या है ? कविता शाब्दिक खिलवाड़ और नपुंसक - विद्रोह का

रूप ले रही है । उदाहरण के लिए इसी उपन्यास की झंझावात की यह कविता लीजिए :5

"चुप रहो ! चुप रहो !
मैं हूँ झंझावात !
और तुम सब वाहियात,
तुम सब बदजात,
तुम सब कुरूफात ।
यह साला पूंजीपति --

यह साली पुलिस सत्ता का दानव, रहा है हमें घिस लेकिन मैं हूं झंझावात - भयानक उत्पात - जो मुझसे टकरायेगा - चूर चूर हो जायेगा --

मेरी एक हिस्स -

पूंजीपति फिस्स - पुलिसवाला फिस्स ! 85

"कुरु कुरु स्वाहा", "राग दरबारी" तथा "कथा सूर्य की नयी यात्रा" प्रभृति में भी आधुनिक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिवेश पर खूब व्यंग्य किए गए हैं जिनकी पर्याप्त चर्चा पूर्ववर्ती विवेचन में कर चुके हैं ।

## निष्कर्ष

सम्पूर्ण अध्याय के समग्रालोचन से यह प्रति फलित होता है कि उपन्यास की व्यंग्यात्मक मुद्रा को उकेरने के लिए तदनुरूप परिवेश का निर्माण अत्यन्त आवश्यक है । इस व्यंगात्मक परिवेश के निर्माण में भाषा एवं व्यंगात्मक

क्षणों की सहायता ली जाती है । ग्रामीण एवं नगरीय परिवेश के कतिपय व्यंग्यात्मक स्थलों को सविशेष उकेरा जाता है जिन का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत अध्याय में नाना शीर्षकों के अंतर्गत किया गया है ।

## सन्दर्भ

1 तुलनीय : "Certain dark gardens cry aloud for murder, certain old houses demand to be haunted. Certain coasts are set apart for ship-wrecks."

: काव्य के रूप : पृ॰ 169 से उद्धृत ।

2 कुरु कुरु स्वाहा : पृ॰ 41 ।

3 दृष्टव्य : "जिस रहस्यमयी गुर्जर - सुन्दरी से आप अभिभूत और आक्रान्त हैं उसके सम्बन्ध में ऐसा विचार उठा है मनमें, कि कहीं वह अपने आयुष्यमान क्लीक की सुखदा संरक्षिका तो नहीं ? दर्शनों के सौभाग्य से अब तक वंचित रहा हूँ किन्तु विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि वह कल्याणी अप्सरावत सुन्दर और कुबेरवत समृद्ध हैं ।" वही : पृ॰ 24 ।

4 "The novel is not merely a fictional prose. It is a prose of man's life, the first art to attempt, to take the whole man and give his expression : Ralph Fox : The Novel and the People : P. 20.

5 "राग दरबारी" पृ॰ .31 ।

6 "कुरु कुरु स्वाहा" पृ॰ 40 ।

7 वही : पृ॰ 40-41 ।

8 "नेताजी कहिन" : पृ॰ 26 ।

9 वही : पृ॰ 26 ।

10 दृष्टव्य : "उपन्यास का नायक है मनोहर श्याम जोशी, जो इस उपन्यास के लेखक मनोहर श्याम जोशी के अनुसार सर्वथा कल्पित

पात्र है । वह नायक तिमंजिला है । पहली मंजिल में बसा है "मनोहर" - श्रद्धालु, भावुक किशोर । दूसरी मंजिल में "जोशीजी" नामक इण्टेलेक्युअल और तीसरी में दुनियादार श्रद्धालु " मैं " जो इस कथा को सुना रहा है ।" लेखकीय वक्तव्य से ।

11 होर्जे लुई बोर्जेस ।

12 "कुरु कुरु स्वाहा" पृ॰ 52 ।

13 वही : पृ॰ 52-53 ।

14 वही : पृ॰ 58 ।

15 वही : पृ॰ 58 ।

16 "राग दरबारी" पृ॰ 90 ।

17 "कथा-सूर्य की नयी यात्रा" : पृ॰ 9 ।

18 "राग दरबारी" : पृ॰ 91 ।

19 वही : पृ॰ 91-92 ।

20 वही : पृ॰ 99-100 ।

21 "धरती धन न अपना" : पृ॰ 27 ।

22 "नदी फिर बह चली" : पृ॰ 222 ।

23 दृष्टव्य : "बगल में बैठी हुई मिसेज को भी बीफ़ पसन्द नहीं था । पर वह मुसकुरा - मुसकुराकर बीफ़ खा रही थी क्योंकि वह यह नहीं चाहती थी कि कोई उसे "कासिल" या "बैकवर्ड" या "रिएक्नशरी" समझे । : पृ॰ 176 । "दिल एक सादा कागज"

24 "दिल एक सादा कागज" : पृ॰ 175 ।

25 "राग दरबारी" : पृ॰ 155 ।

26 "नदी फिर बह चली" : पृ॰ 344 ।

27 "राग दरबारी" : पृ॰ 269 ।

28 "दिल एक सादा कागज" : पृ॰ 146 ।

29 "अलग अलग वैतरणी" : पृ॰ 632 ।

30 "सबहि नचावत राम गोसाई" : पृ॰ 11 ।

31 वही : पृ॰ 20।

32 द्रष्टव्य : "आधा गाँव" : पृ॰ 357-358 ।

33 "कभी न छोड़ें खेत" : पृ॰ 89 ।

34 "इमरतिया" : पृ॰ 28-29 ।

35 "हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना" : डॉ॰ कुँअरपालसिंह : पृ॰ 189 ।

36 "राग दरबारी" : पृ॰ 47 ।

37 वही : पृ॰ 47 ।

38 वही : पृ॰ 48 ।

39 वही : पृ॰ 92-93 ।

40 वही : पृ॰ 262-271 ।

41 "नदी फिर बह चली" : पृ॰ 365 ।

42 अवैध गर्भ के गिराने पर उसकी आत्मा से जिस प्रेत की सृष्टि होती है उसे "पेटमड़ुआ" कहा गया है ।

43 See, "The theory of love had been evolving since the early middle ages, and was based on the great classics mentioned earlier, especially the 'Kama Sutra'. It gradually developed a bias towards the emotions and culminated in a poem composed in 1591 by Keshavdas, called 'Rasikpriya' in which the range of standard erotic experiences is described in considerable detail, with analyses of the different types of male and female lovers and colourful descriptions of the relationships between them".

Erotic Art of India : Philip Rawson from Introduction.

44 "जुलूस" : पृ॰ 36 ।

45 देखिए : "जुलूस" पृ॰

46 "सबहि नचावत राम गोसाईं" : पृ॰ 61-62 ।

47 "इमरतिया" : पृ. 117 ।

48 "जुलूस" : पृ. 119 ।

49 वही : पृ. 79 ।

50 'Six Decades of Urbanization in India" : AShish Bose : P. 173 .

51 "भारतीय सामाजिक समस्याएँ" : श्री एम.एल., डी.डी. शर्मा : पृ. 112 ।

52 "छाया मत छूना मन" : पृ. 7 ।

53 "एक टूटा हुआ आदमी" : पृ. 146 ।

54 "दिल एक सादा कागज" : पृ. 63 ।

55 वही : पृ. 63 ।

56 See, second plate of the book 'Erotic Arts of India' in which the situation of polygamous royal household, is illustrated. In the plate. 'The prince enjoys five of his women at once, two with his hands, two with his feet and one with his sexual organ." : Erotic Arts of India" : Philip Rawson : Second plate.

57 उपन्यास 1962 का है । अत: यह आठ-दस हजार उस जमाने के हैं, आज की दृष्टि से सत्तर अस्सी हजार से कम नहीं बैठते और फिर उस पर आयकर नहीं होता ।

58 "एक चूहे की मौत" : पृ. 99 ।

59 "प्रश्न और मरीचिका" : पृ. 218-219 ।

60 "सबहि नचावत राम गोसाईं" : पृ. 18-19 ।

61 "इमरतिया" : पृ. 27 ।

62 वही : पृ. 111 ।

63 "नदी फिर बह चली" : पृ. 278 ।

64 वही : पृ. 278 ।

65 वही : पृ. 260 ।

66 "मुरदाघर" : पृ॰ 22-23 ।

67 दृष्टव्य : "साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास" : डॉ॰ पारुकान्त देसाई : पृ॰ 163-164 ।

68 "मुरदाघर" : पृ॰ 179 ।

69 वही : पृ॰ 75 ।

70 वही : पृ॰ 74-75 ।

71 "सबहिं नचावत राम गोसाई" : पृ॰ 137 ।

72 "नदी फिर बह चली" : पृ॰ 285-286 ।

73 "दिल एक सादा कागज" : पृ॰ 174 ।

74 "सीमाएँ टूटती हैं" : पृ॰ 131 ।

75 "राग दरबारी" : पृ॰ 15 ।

76 देखिए : "कथा सूर्य की नयी यात्रा": पृ॰ 87-89 ।

77 वही : पृ॰ 99 ।

78 वही : पृ॰ 13 ।

79 "राग दरबारी" : पृ॰ 25 ।

80 "सबहिं नचावत राम गोसाई" : पृ॰ 139-140 ।

81 वही : पृ॰ 143 ।

82 वही : पृ॰ 142 ।

83 वही : पृ॰ 142 ।

84 वही : पृ॰ 144 ।

85 वही : पृ॰ 145 ।

. . . . .